नया हो जाएगा घर-बार
लद-लद कर आवेगी कार

नेताओं ने श्रद्धा और विश्वास का भी विक्रय किया है। आदर्शों की कीमत लगाई है। अबोध जनता भावुक होकर उन्हें सत्ता सौंपती है और बदले में वह बैंक बैलेंस बढ़ाते हैं। ऊँची-ऊँची कोठियाँ खड़ी करते हैं। जाति और सम्प्रदाय का खेल खेलते हैं। नागार्जुन इस वास्तविकता को देखकर तीखा व्यंग करते हैं—

बेंच-बेंच कर, गाँधी जी का नाम
बटोरो वोट, बैंक बैलेंस बढ़ाओ
राजघाट पर बापू की वेदी के
आगे अश्रु बहाओ

विषयवस्तु की दृष्टि से नागार्जुन की कविताएं सपाट बयानी पर आधारित हैं। वे अत्यन्त बेबाकी से वस्तुस्थिति विवेचित कर देते हैं। उनकी कविता एक पतनोन्मुख समाज में जड़ हो रही संवेदना के बीच प्रचण्ड युग सत्य बन कर प्रकट होती है। असंतोष, आक्रोश, तनाव, व्यंग्य, उदासीनता के अनेक संदर्भ परस्पर घुल-मिलकर भयावह परिस्थिति का बयान करते हैं—

कबिरा खड़ा बाजार में लिये लुकाठी हाथ
बन्दा क्या घबरायेगा जनता देगी साथ
छीन सके तो छीन ले, लूट सके तो लूट
मिल सकती कैसे भला अन्नचोर को छूट

वास्तव में व्यंग्य नागार्जुन की कविताओं को अत्यन्त जीवंत पृष्ठभूमि प्रदान करता है। डॉ० प्रभाकर माचवे के शब्दों में, "जब नागार्जुन का नाम हिन्दी कविता के इतिहास में लिया जायेगा, तब उनकी सामाजिक, राजनैतिक व्यंग रचना के लिये वे याद किये जायेंगे। नागार्जुन के जीवन चित्र से यह पता चलता है कि वह बौद्ध दर्शन के क्षण परिवर्तित संस्कारों से कैसे दुख की कारण मीमांसा में पड़े और साहित्य के द्वारा राजनीति की परिवर्तनशील मतावली में एक सूत्रता खोजते रहे।" नागार्जुन का युग ऐसा है जहाँ सच को जानने व कहने के खतरे हैं, उससे भी कठिन है सच को जीना, उसे मर्म में ढाल लेना। राग व विद्रोह से नागार्जुन का काव्य वैभव निर्मित हुआ है। नागार्जुन की कविताओं में राग के तीन आयाम हैं—प्रकृति प्रेम, नारी प्रेम और देश प्रेम। इन तीनों का सम्बन्ध भाव पक्ष की स्फूर्ति सहजता व सरसता से है। प्रकृति से नागार्जुन का रागात्मक लगाव है। बादल उनकी कविता का प्रिय प्रतीक है। बादल को घिरते देखा है नामक कविता में प्रकृति सौंदर्य के अनेक बिम्ब हैं। इस कविता में जीवन की लय उमंग है—

ऋतु बसंत का सुप्रभात था
मन्द-मन्द था अनिल बह रहा
बालारुण की मृदु किरणें थीं,
अगल-बगल स्वर्णिम शिखर थे

Scanned by CamScanner

चांदनी का चित्रण कवि स्वच्छंद भावावेश के साथ करती है। चांदनी प्रफुल्लित होकर नाच और उछल रही है। भावों की ऐसी सहजता, अल्हड़ता, कमनीयता जीवन के राग को पकड़ने का सजग प्रयत्न है—

आंगन में, दूबों पर गिर पड़े
अब मगर किस कदर संभल रही चांदनी
पिछवाड़े बोतल के टुकड़ों पर
नाच रही, कूद रही, उछल रही चांदनी
वो देखो सामने
पीपल के पत्तों पर फिसल रही चांदनी

नागार्जुन का साहित्य भारत के सामाजिक जीवन की मार्मिक कहानी है। करुणा मिश्रित यथार्थ बोध भी उनके साहित्य का स्थायी भाव है। करुणा का आवेग जहां मानवीय सहानुभूति को व्यापक विस्तार प्रदान करता है वहीं उससे जुड़ा यथार्थबोध ऐसी सभी मान्यताओं, रूढ़ियों, रीति-रिवाजों को छिन्न-भिन्न कर डालता है जिनके प्रभाव से सामाजिक जीवन में करुणा मूलक त्रासदी विकसित होती है। नागार्जुन सामाजिक जीवन को करुणा मूलक त्रासदी से उत्साह के सुखद संचार की ओर ले जाना चाहते हैं—

पुलकित तन हो
मुकुलित मन हो
सरस और सक्षम जीवन हो!
फिर न युद्ध हो
गति न रद्ध हो
निर्भय निरांतक यौवन हो!

प्रगतिशील चेतना के उदय और विकास से ही उपरोक्त रचनात्मक संकल्प फलीभूत हो सकता है, परन्तु दुर्भाग्य यह है कि मनुष्य के सामाजिक, राजनीतिक जीवन के इतिहास में ऐसे तत्त्वों का प्रभुत्व रहा है, जिन्होंने मानवीय मूल्यों के विपक्ष में कार्य किया। कालांतर में यह विद्रूप यथार्थ पूरे युगीन जीवन का सच बन गया। नागार्जुन का आक्रोश ऐसे परिवेश के प्रति था, जिसके कारण सम्पूर्ण जीवन एक तीक्ष्ण व्यंग का प्रतीक बनकर रह जाता है। जिस प्रकार सृजन की गति निरंतर चलती रहती है जैसे ग्रह, नक्षत्र निरंतर गतिशील है, जड़-चेतन सभी किसी न किसी प्रवाह की ओर उन्मुख है, रचनाकार भी जीवन का सहभोक्ता बनकर काल की व्यापक चुनौती से जूझता है। नागार्जुन प्रगतिशीलता के औचित्य को पूरी गहराई से पहचानते थे इसलिए वे जानते थे कि पूरे नैतिक साहस के साथ ही मानवीय नियति को बदलने वाली जीवन दृष्टि सृजित की जा सकती है, प्रयोग में लायी जा सकती है, जन-जन के आकांक्षा का विषय बन सकती है। प्रगतिशील साहित्य का महत्त्व इसी बिन्दु पर सर्वाधिक है। प्रगति सोद्देश्य जीवन यात्रा है इसलिए प्रगति केन्द्रित रचना दृष्टि विधि निषेध पर

Scanned by CamScanner

आधारित है। प्रगति का विधायक पक्ष क्या है और प्रगति विरोधी संदर्भ कौन-कौन से हैं? इन दोनों ही प्रश्नों का समाधान प्रगतिशील रचनाकार का दायित्व रहा है।

सामाजिक समता प्रगतिवादी काव्य दर्शन का प्रेरक बिन्दु रहा है। यही कारण है कि इन कवियों का काव्य नव आह्वान का काव्य है। शोषण, अन्याय, पशुता, हिंसा से मुक्ति जनवादी रचनाकारों को आन्दोलित करता रहा है। नागार्जुन के लिए कवि कर्म सार्थक जीवन मूल्यों को प्राप्त करने का दृष्टि संघर्ष है—

'सभी कलाधर,
सभी सुधाकर
सबके मुँह पर अतुल कान्ति हो!
हटे दनुज दल मिटे अमंगल
जल, थल, नभ सर्वत्र शांति हो!'

पवित्र, निष्कलुष जीवन की सहज आकांक्षा नागार्जुन की प्रगतिशील चेतना को अक्षय भावकोष प्रदान करती है। प्रगति की ऊर्जा का प्रबल आवेग जिसमें ओज और विद्रोह, प्रेम और सौन्दर्य, समता और समरसता की अनेक धाराएं घुल-मिल कर नवजीवन का रोचक आस्वाद विकसित करती हैं, जिसमें अन्तर्विरोध के ताप को शमन करने की क्षमता है। जो रचनाकार व्यक्तिगत जीवन को भी प्रगतिशील जीवन मूल्यों से जोड़ता है, वह अपनी सृजन यात्रा को उतना ही उत्कृष्ट और प्रभावोत्पादक बना पाता है। नागार्जुन ने जीवन के बहुआयामी संदर्भों को न केवल जिया अपितु उसके आधार पर जीवन के वास्तविक यथार्थ का अन्वेषण किया और लोकमंगल की भावना को चरितार्थ किया। वास्तव में नागार्जुन का साहित्य दर्शन साधन और साध्य दोनों दृष्टियों से तर्कसंगत, समन्वयात्मक है, जो जीवन के सच्चे सरोकारों को आत्मसात् करने की दृष्टि से पूरी तरह मुक्त और प्रवाहमय है।

❑❑❑

Scanned by CamScanner

छोड़कर इसको कहाँ, निस्तार
छोड़कर इसको कहाँ उद्धार

नागार्जुन की कविताओं में घनीभूत वर्णनात्मकता है जिनके माध्यम से जन-जीवन का यथार्थ प्रकट होता है। यथार्थ का द्वन्द्व उन्हें रचनात्मक आवेग प्रदान करता है, जिसके प्रभाव से विचार व भाव परस्पर घुलमिलकर मार्मिक जीवन सत्य के रूप में प्रकट होते हैं। विचार व भावना का संयुक्त भावबोध नागार्जुन की कविताओं को अद्वितीय आकर्षण प्रदान करता है। प्रगतिशील कवियों ने जीवन-सत्य की मीमांसा बौद्धिक धरातल की पृष्ठभूमि में की है। नागार्जुन की कविताओं में भी 'सच' समग्र जीवंतता के साथ मूर्तमान होता है। सामान्य से सामान्य प्रसंगों में मानवीय कार्य-व्यवहार को प्रतिध्वनित करने की ताकत है—

कृत कृत नहीं जो हो पाये
प्रत्युत फांसी पर गये झूल
कुछ ही दिन बीते हैं फिर भी
यह दुनिया जिनको गई भूल
उनको प्रणाम!

नागार्जुन की कविता विचार प्रधान भाव-संवेदनाओं की कविता है, विचार के धरातल पर जहाँ यथार्थ का दंश प्रकट होता है वहीं भाव के धरातल पर उसका संबंध जीवन की सुंदर प्रवृत्तियों के प्रति स्वाभाविक अनुराग है। वर्तमान घायल मानवता में घनीभूत आक्रोश है। शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व की भावना का पूरे विश्व में लोप हुआ है। मानवता का दुख दर्द वस्तुत: अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है। अफ्रीका के 'लुमुम्बा' की हदया पर नागार्जुन इसी भाव से शोष प्रकट करते हैं—

मैं सुनता हूँ अफ्रीका की आत्मा का आक्रोश
मैं सुनता हूँ धरती के कण-कण का शोष।

नागार्जुन की कविताओं में व्यक्त सौन्दर्यबोध सामान्य जीवन की संवेदना पर आधारित है। उन्होंने धरती के यथार्थ को देखा है, श्रमरत कृषक व मजदूरों की भाषा में जीवन का गीत गाया है तथा जीवन के कुरूप में भी सौन्दर्य के आकर्षण को खोना है। 'पैने दांतों वाली' नामक कविता में 'मादा सुअर' के माध्यम से जीवन के वात्सल्य की पहचान प्रगतिशील सौन्दर्य दृष्टि को रेखांकित करती है—

लेकिन अभी इस वक्त
छौनों को पिला रही है दूध
मन-मिजाज ठीक है
कर रही है आराम
अखरती नहीं है भरे पूरे थनों की खींचतान
दुधमुँहे छौनों की रग-रग में
मचल रही है आखिर माँ की ही तो जान!

Scanned by CamScanner

स्मृति बिम्बों के माध्यम से पत्नी विषयक अनुराग जीवंत हो उठता है—

घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है ठाल
याद आता तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल

राग का तीसरा पक्ष स्वदेश प्रेम से सम्बन्धित है। स्वदेश प्रेम नागार्जुन की रचनात्मक ताकत है। उनकी कविताओं में जो सामाजिक यथार्थ है, छद्म प्रगतिशीलता का उद्‌घाटन है, साम्राज्यवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया है उसके मूल में उनकी राष्ट्रीय चेतना निरंतर सक्रिय है। इस प्रकार की कविताओं में भाव-सौन्दर्य देखते ही बनता है। विचार और भावना का सुन्दर तालमेल राष्ट्रीय कविताओं को स्थाई महत्व प्रदान करता है—

आज तो मैं दुश्मन हूँ तुम्हारा
पुत्र हूँ भारत माता का
और कुछ नहीं हिन्दुस्तानी हूँ महज।
प्राणों से भी प्यारे हैं मुझे अपने लागे,
प्राणों से भी प्यारी है मुझे अपनी भूमि।

नागार्जुन की कविताएँ निष्कपट हृदय की उपज है। सरलता उनकी प्रकृति है। वे कृत्रिम भावों के कवि नहीं हैं वे जिस युग में उत्पन्न हुए हैं उसमें देश की बहुसंख्यक जनता को अपना अस्तित्व बचाये रखने के लिये प्रतिपल संघर्ष करना पड़ता है। वह भोले-भाले लोगों की दुनिया है। जो तमाम संकटों और अभावों के बावजूद अपने आचार-विचार, रीति-रिवाज, उत्सव व संस्कृति से जुड़े हुये हैं। यही कारण है कि जीवन विरोधी शक्तियाँ आसानी से उन्हें वश में कर लेती हैं। इसलिये नागार्जुन क्रांति की भाषा में बात करते हैं। वे जनता के सच्चे हितैषी हैं। नागार्जुन लीक से हटकर चलने वाले रचनाकार हैं। अनौचित्य को अस्वीकार करने का उनमें अद्‌भुत साहस है। साहित्यकर्म उनके लिये सजग जीवन साधना है। उनकी मान्यता है मेरे आदर्शों व छद्म व्यवहार से न तो उत्तरदायी शासन संभव है और न ही जनतांत्रिक मूल्य बचे रह सकते हैं। इन सभी दृष्टियों से उनकी अधिकांश कविताएँ विचार प्रधान हैं। प्रतिबद्ध हूँ, खुरदुरे पैर, चन्दू मैंने सपना देखा, नेवला, बहुत दिनों के बाद, पैने दाँतों वाली, प्रेत का बयान, अकाल और उसके बाद, मास्टर, शासन की बन्दूक, सत्य, अगि नबीज जैसी कविताएँ विचार शक्ति की प्रतीक हैं। इनके माध्यम से वे समकालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों की परत दर परत उघाड़ते हैं। इस रचना प्रक्रिया में जीवन की त्रासदी से साक्षात्कार होता है। अभावग्रस्त मानवता की करुण व्यथा बोलती है। जन प्रतिनिधियों के आचरण पर कवि व्यंग करता है। और व्यवस्था परिवर्तन हेतु अपने निजी संकल्प को बार-बार दुहराता है। मानवीय जिजीविषा और उसके मूल में सुख-दुख, आशा-निराशा, सृजन-विध्वंस के द्वन्द्व को नागार्जुन प्रत्यक्ष जीवनानुभव के आधार पर व्यक्त करते हैं। 'कल्पना के पुत्र हे भगवान' नामक कविता इसी मनःस्थिति से प्रेरित है—

यही है सुख-दुख का अवबोध
यही हर्ष-विषाद, चिंता, क्रोध
यही है सम्भावना अनुमान

Scanned by CamScanner

एक-दूसरे से विरहित हो,
अलग-अलग रह कर ही जिनको
सारी रात बितानी होती

प्रकृति की भावनात्मक सत्ता कवि के तप्त हृदय को शांत व शीतल बनाती है। खेतों की हरियाली, ग्राम जीवन की सहजता उन्हें आकर्षित करती है। डॉ० प्रभाकर माचवे के अनुसार—"प्रकृति उनके लिये अपने अधूरे सपनों का नीड़ कभी नहीं रही। वहाँ पलायन कर इस धरती के दुख-दर्द को भूल जाने की बात उन्होंने कभी मन में नहीं ठानी। इसीलिये चाहे प्राकृतिक दृश्य हो या प्राकृतिक विषयों पर मानवीयकरण का आरोपण हो, सर्वत्र वे अपने आस-पास के पूरे जीव व जगत की विसंगतियों और विद्रूप को नहीं ढूँढ पाये हैं।" बादल को घिरते देखा है नामक कविता में भी देश-काल विषयक परिस्थिति की व्यंजना है। इसके साथ ही प्रकृति के विश्वचित्र उनकी कविताओं में रोचक भावानुभूति बनकर उत्पन्न हुये हैं—

रंग बिरंगी खिली-अधखिली
किसिम-किसिम की गंधों स्वादों वाली ये मंजरियाँ
तरुण आम की डाल-डाल, टहनी-टहनी पर झूम रही हैं—
चूम रही हैं।

सिन्धु नद नामक कविता में कवि सिन्धु नदी के माध्यम से मुक्ति का स्वप्न देखता है—

हम अपराधी तुम हो स्वतंत्र
सिखलाते जाओ नया मंत्र
है हिमगिरी के साकार भाव
डूबे न हमारी भरी नाव

नागार्जुन का नारी विषयक प्रेम स्वस्थ, सात्विक आकर्षण का पर्याय है। उसके अन्तर्गत सहज आत्मीयता का भाव प्रतिबिम्बित होता है—

सिकुड़ गई रग-रग
झुलस गया अंग-अंग
बनाकर ठूँठ छोड़ गया पतझार
उमंग, असगुन सा खड़ा रहा कचनार
अचानक उमंगी डालों की संधि में
छरहरी टहनी
पोर-पोर में थे टेसू
यह तुम थी।

Scanned by CamScanner

नागार्जुन की कविताओं का भावपक्ष

नागार्जुन की कविताओं का भावपक्ष जीवन की समविषम रेखाओं से प्रभावित है। विषयवस्तु की दृष्टि से उनकी कविता विचार प्रधान है। करुणा, आक्रोश, व्यंग्य, प्रेम, सौंदर्य आदि प्रवृत्तियाँ नागार्जुन की कविताओं को भाव पक्ष की दृष्टि से समृद्ध बनाती हैं। उनकी कविताओं की विषय-वस्तु एक साथ सरल व गम्भीर है, उदात्त व सघन है। उनमें प्रस्तुत होने वाला परिवेश जीवन के विविध पक्षों को संदर्भगत बहुलता के साथ चित्रित कर देता है। अनौचित्य का विरोध और औचित्य का समर्थन नागार्जुन की भावात्मक पूंजी है। उनकी सम्पूर्ण साहित्य साधना का पर्याय है, जो जीवन के अन्तर्विरोधों और विसंगतियों को तर्कपूर्वक प्रत्युत्तर देने में समर्थ हैं—

राजनीति क्या है? विष्ठा है, मल है।
साहित्य क्या है? गंगा का जल है।
दिखाने के दांत और खाने के और
आप तो अमलेन्द्र जी ठहरे, खैर समाज के सिरमौर
जातिवाद डण्डा है राजनीति मथनी
करनी अलग है, अलग है कथनी

साहित्य और राजनीति का यह गुणात्मक अन्तर नागार्जुन की चिंतन और संवेदना को एक विशेष अर्थ प्रदान करता है। राजनीति उत्तरदायी शासन व्यवस्था की प्रतीक है। लेकिन वर्तमान युग की राजनीति पूरी तरह प्रदूषित है। साहित्यकार का दायित्व राजनीतिक विद्रूपता को दूर करने का प्रयास करना है।

नागार्जुन की अधिकतर कविताएँ राजनीतिक पाखण्ड के प्रति जन-जन को सावधान करती हैं—

सपने में भी सच न बोलना, वर्ना पकड़े जाओगे
भैया लखनऊ, दिल्ली पहुँचो मेवा मिश्री पाओगे

व्यवस्था के प्रति व्यंग्य वे कई कृतियों में करते हैं। जन प्रतिनिधि विविध तरीकों से समृद्ध होते जाते हैं जबकि सामान्य जनता की हालत यथावत बनी रहती है। ऐसे में आवेश मिश्रित व्यंग्य सार्थक अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत होता है—

चना है बना मसालेदार,
खाइये भी तो यह सरकार
मिलेगा परमिट बारम्बार
मिलेंगे सौदे सभी उधार

Scanned by CamScanner

लोमश मुनि के,
दुर्वासा उपकुलपति बनने की फिराक में
घात लगाये घूम रहे हैं।

लाक्षणिक-प्रयोगों के अनेक उदाहरण नागार्जुन की कविताओं में मिलते हैं—

(क) अपने हाथों से झोंको अपनी ही आंखों में धूल।

(ख) होठों को कम्पित कर लो, रह-रह कर कनखी मार लो।

(ग) गिरगिट के अंडे सेता हूँ, मैं देख रहा।

(घ) महलों की महंगी बिजली से डरती संध्या, डरता प्रभात।

छंद योजना की दृष्टि से नागार्जुन की कविताएं छंदबद्ध तुकांत, छंदबद्ध अतुकांत व छंदमुक्त अतुकांत आदि वर्गों में विभक्त है। उनकी कविताओं में छंदगत लय व प्रवाह भी है, तथा वर्णनगत ओज व आवेग भी है। छन्दमुक्त तुकान्त कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है—

अपना मैं समझती
भले ही वह पीटता, भले ही मारता।
किन्तु किसी क्षण में प्यार भी करता।

छंदबद्ध तुकांत कविताएँ रोचक प्रभाव उत्पन्न करने वाली हैं। भाव व शिल्पगत रमणीयता एक साथ उद्घाटित हुई है। इस प्रकार के उदाहरणों में नागार्जुन की उत्कृष्ट काव्य प्रतिभा का परिचय मिलता है—

तुम वही पंक जिसकी फसलें होती शतदल
युग की भ्रमरावलि करती है गुनगुन अविरल
युगनद मिथुन की भाव भूमि, तुम रस-पिच्छल
तुम स्वेद-सुरभि, द्वारा जिससे मृगनद परिमल।

नागार्जुन की कविताएँ विचार प्रधान हैं। इसका प्रभाव काव्य-शिल्प पर भी पड़ा है। कविता उनके लिये साध्य न होकर साधन ही है। काव्य-सृजन के मूल में उन्होंने जिस विषयवस्तु का चयन किया है, वह सामाजिक जीवन के तनाव व आक्रोश से सम्बद्ध है। नागार्जुन की कविताओं के शिल्प पक्ष का आकर्षण विषयवस्तु की संवेदना से जुड़कर ही है। भाषा, छंद, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब का सजीव विधान सहज किन्तु अद्वितीय काव्य शिल्प की सृष्टि करता है।

□□□

Scanned by CamScanner

नागार्जुन ने अलंकारों का रमणीय प्रयोग किया है। उनकी रचनाओं में उपमा, रूपक, विरोधाभास, विसंगति, मानवीयकरण, विशेषण विपर्यय व ध्वन्यर्थ व्यंजना आदि विविध अलंकारों का प्रयोग किया गया है। इस प्रयोग में भावानुरूपता की प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई पड़ती है। भावों की नाटकीयता प्रदर्शित करने में नागार्जुन एक समर्थ रचनाकार हैं। नागार्जुन का अलंकार विधान अत्यन्त सजग, मनोरम और जीवंत है। कुछ प्रमुख उदाहरण इस प्रकार हैं—

अनुप्रास— लघु-लघुतर-लघुतम से, महा-महा विशाल से

उपमा— छोटे-छोटे मोती जैसे
उसके शीतल तुहिन कणों से

रूपक— हजार बाँहों वाली शिशिर विषकन्या
उतरी ले कर सांसों में प्रलय की वन्या

असंगति— कोट मिलना लगता आसान
कहीं पर भोज, कहीं गुणगान
कहीं पर धोक नगद-वरदान

विशेषण

विपर्यय— कला गुलाम हुई इनके आगे, कविता पानी भरती है,
सौ-सौ की मेहनत इनकी मुस्कानों पर मरती है।

मानवीकरण बसंती हवा हूँ, चढ़ी पेड़ महुवा
थपा-थप मचाया, गिरी धम्म से
फिर चढ़ी आम ऊपर, उसे भी झकोरा
किया कान में कूँ, उतर कर भगी मैं
हरे खेत पहुँची वहाँ गेहुँओं में लहर खूब मारी!

नागार्जुन की कविताएँ लाक्षणिकता व प्रतीकात्मकता की दृष्टि से भी गम्भीर अर्थ सृष्टि उत्पन्न करने वाली हैं। लाक्षणिकता का प्रयोग मुहावरों व व्यंगोक्तियों के रूप में किया गया है जबकि प्रतीकात्मकता का प्रयोग नेताओं, छल-छद्मों, पाखण्डों पर व्यंग करने के लिये किया गया है। नागार्जुन जीवन के छोटे-छोटे, सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव, विचार, परिस्थिति एवम् घटना प्रसंगों का प्रयोग करते हैं और उपयुक्त रचना विधान से कविता की विषयवस्तु को उत्कृष्ट संदर्भ प्रदान करते हैं। नागार्जुन की कविताओं से प्रतीकात्मकता के कुछ विशिष्ट उदाहरण इस प्रकार हैं—

(क) देखा हमने चिड़ियाखाना
सुना हमने चीखना और चिल्लाना
धवल टोपियाँ फेंक रहे थे
मगर गर्भों से रेंक रहे थे

(ख) भूमिदान करवाने की जो सनक सवार हुई है सिर पर

Scanned by CamScanner

4. स्पृश्य बिम्ब

हजार बाहों वाली शिशिर विष कन्या,
उतरी लेकर सांसों में प्रलय की वन्या
हित दग्ध होठों के, प्राण सोशी चुम्बन
तन-मन पर लेप गये, ज्वालामुखी चन्दन
एक-एक शिरा में सौ-सौ सुईयों की चुभन
अद्भुत वह भुजधारा, अद्भुद आलिंगन
तृण-तरु झुलस गये, पड़ा है ओस मय तुषार

बिम्ब विषयक इन सभी उदहारणों में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध की संवेदना साकार हो उठी है।

नागार्जुन की कविताओं में मुख्य रूप से वर्णनात्मक, उद्‌बोधनात्मक व व्यंगात्मक शैली स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इस शैली की रचना का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

क्योंकि हमको स्वयम् भी तो तुच्छता का भेद है मालूम
कि हम पर सीधे पड़ी है गरीबी की मार
सुविधा प्राप्त लोगों ने सदा ही समझा भू-भार

उद्‌बोधनात्मक शैली में भाव के मर्म से प्रेरित प्रभावपूर्ण कविताएँ नागार्जुन ने लिखी हैं। बसंत की आगवानी, स्वदेशी शासक, कर दो वमन इसी प्रकार की कविताएं हैं। इस प्रकार की शैली का उदाहरण द्रष्टव्य है—

प्रभु तुम कर दो वमन!
होगा मेरी क्षुदा का शमन!!
स्वीकृत हो करुणामय
अजीर्ण अन्न भोजी,
अपंगों का नमन।

नागार्जुन की कविताओं में सबसे महत्वपूर्ण शैली व्यंग्यात्मक है। चना जोर गरम, मंत्र कविता, इस प्रकार की कविताएं हैं। डा० राम विलास शर्मा के शब्दों में, "भारतेन्दु और बाल मुकुन्द गुप्त ने हमारे साहित्य में जो अंग और जिन्दादिली पैदा की, नागार्जुन उसका समर्थ प्रतिनिधि है।" नागार्जुन की राजनैतिक कविताएँ व्यंगात्मक शैली में लिखी गई हैं। इस शैली का उदाहरण—

तुम मुस्कान लुटाती जाओ
तुम वरदान लुटाती जाओ
जाओ जी चाँदी के पथ पर
जाओ जी कंचन के रथ पर
नजर विधि है एक-एक दिक्पाल की
छटा दिखाओ गति की, लय की, ताल की
आओ रानी हम ढोएँगे पालकी!

Scanned by CamScanner

जन-मन को आडम्बर प्रिय हैं, उसको नाटक
खोल दिये हैं तुमने कैसे इन्द्र सभा के फाटक

काव्य भाषा का तीसरा आयाम लोक जीवन की संवेदनाओं के चित्रण के क्षण दिखाई देता है। तद्भव और देशज शब्दावली, प्रतीकात्मकता एवं लाक्षणिकता तथा मुहावरों के प्रयोग से युक्त यह भाषा अत्यंत जीवंत व मार्मिक है—

कैसे तो अनोखे हैं अभागे के हाथ-पैर
राम जी ही करेंगे इसकी खैर
हम कैसे जानेंगे, हम ठहरे हैवान
देखों तो कैसा मुलुर-मुलुर देख रहा शैतान!

नागार्जुन की कविताओं में बिम्ब और प्रतीकों का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है। स्मृति, दृश्य, स्पृश्य, संश्लिष्ट आदि अनेक प्रकार के बिम्ब मूलक उदाहरण उनकी कविताओं में मिलते हैं। भाव सौन्दर्य व वर्णन कौशल दोनों दृष्टियों से नागार्जुन के बिम्ब सजीव व प्रभावोत्पादक हैं। कुछ प्रमुख उदाहरण इस प्रकार हैं—

1. लोक जीवन से युक्त संवेदनात्मक बिम्ब—

पूस मास की धूप सुहावन
फटी दरी पर बैठा है चिररोगी बेटा
राशन के चावल से कंकड़ बीन रही पत्नी बेचारी
गर्भ भार से अलस, शिथिल हैं अंग-अंग
छप्पर पर बैठी है बिल्ली

2. स्मृतिबिम्ब—

घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल!
याद आता तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल

3. दृश्य बिम्ब—

ग्राम वासिनी
नगर वासिनी
माताओं, बहनों, बहुओं की
रुकी निगाहें
झुकी निगाहें
क्रुद्ध निगाहें
क्षुब्ध निगाहें
करुण निगाह
डरी निगाहें

Scanned by CamScanner

अत्यंत साधारण ढंग से कह देते हैं। यह उनकी कविताओं में विद्यमान अभिव्यंजना शक्ति का कौशल है। डॉ० नामवर सिंह के शब्दों में, "जनकवि के रूप में नागार्जुन की सबसे बड़ी उपलब्धि है कविता के कलात्मक सौन्दर्य की बलि चढ़ाये बिना कविता को सर्वजन सुलभ बना देना।" नागार्जुन की काव्यभाषा के कई आयाम हैं। उन्होंने संस्कृतनिष्ठ तत्सम् भाषा, सहज व्यावहारिक भाषा, तद्भव शब्दावली से युक्त काव्यभाषा का प्रयोग किया है। संस्कृतनिष्ठ तत्सम काव्य भाषा उदाहरण द्रष्टव्य है—

अमल धवल गिरि के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है।
छोटे-छोटे मोती जैसे
उसके शीतल तुहिन कणों को
मानसरोवर के उन स्वर्णिम कमलों पर गिरते देखा है।

माधुर्य गुण, उपमालंकार, कोमलकान्त पदावली, प्रवाहमयता प्रस्तुत छन्द की भाषागत विशेषतायें हैं। भाषा का एक दूसरा रूप है जो सामाजिक विसंगतियों, छद्म व पाखण्ड, आचरणहीनता को उद्घाटित करते समय होता है। काव्यभाषा का यह रूप सहज-सरल और व्यावहारिक है—

आश्वासन की मीठी वाणी, भूखों को भरमाती
पाला पड़ता है लेकिन वह नंगों को गर्माती

Scanned by CamScanner

भी किया है। इस स्थिति को कवि इन पंक्तियों द्वारा अभिव्यक्त करता है -

दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद।

इस प्रकार नागार्जुन ने देश के दुर्भिक्ष और अकाल का चित्रण मानवेतर पात्रों के माध्यम से किया है। इस कविता में जो भाव अंकित किए गए है वह न तो चौंकाते है, न उनमें कोई विशेष चमत्कार दिखता है, लेकिन अर्थवहन करने में वे अद्भुत रूप से सक्षम होते है। कई दिनों तक और कई दिनों के बाद वाक्य खंड के प्रयोग द्वारा उदासहीनता और उल्लास ममता क्या जो वातावरण प्रस्तुत किया है, वह अत्यंत प्रभावशाली है। यह भाषा जनवादी है जिसमें अर्थ-व्यंजनाएं प्रभावशाली है।

—.

Scanned by CamScanner

और बच्चों की बात छोड़िए, चूल्हा तथा चक्की तक उदास रहे। भाव यह है कि अकाल के दिनों में इतना आटा भी मौजूद नहीं था कि एक वक्त के लिए भी चूल्हा सुलग जाता। सारा वातावरण दुख और निराशा से घिरा हुआ था। कहीं से भी आशा की एक किरण दिखाई नहीं देती थी। चूल्हा रोता रहा और चक्की उदास। जिंदगी किसी न किसी बख्शी रही। घर के वातावरण में एक तरह से मुर्दनी का आलम छाया हुआ था। इस स्थिति को कवि इन पंक्तियों में अभिव्यक्त करता है —

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।

दूसरा चित्र अकाल के खत्म होने पर है। कई दिनों के बाद घर में अनाज आया। चूल्हा जला। घर क्या पूरा वातावरण उल्लासमय हो उठा। कई दिनों बाद जब घर में अनाज आया तो फिर चूल्हा जला। उससे धुँआ उठता दिखाई दिया। चूल्हा जला तो घर के सभी सदस्यों की आँखों में चमक आ गई। मानव एवं मानवेतर दोनों प्राणियों में खुशी इस बात की थी कि अब कुछ खाने को मिलेगा। घर में अनाज आने पर मानवेतर प्राणियों में भी खुशी की लहर छा गई। यह खुशी कौवे में भी दिखाई दे रही थी जिसने घर में अन्न आया देखकर पंख खुजलाना शुरू कर दिया था कि अब घर में कुछ बनेगा तो उसे भी मिलेगा। कवि ने दो बिंबों के माध्यम से इस कविता में अकाल और उसके बाद की स्थिति को प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया है। कई दिनों तक और कई दिनों के बाद पदों से व्यंग्य की सौन्दर्य को प्रदान किया है। साथ ही भिन्न भावभूमियों से समृद्ध

Scanned by CamScanner

बी.ए. हिन्दी विशेष द्वितीय वर्ष 4 सेमेस्टर

'अकाल और उसके बाद' कविता का मूल प्रतिपाद्य

'अकाल और उसके बाद' बाबा नागार्जुन की प्रसिद्ध कविता है। हिन्दी के प्रगतिशील काव्य साहित्य में इनका विशेष योगदान है। इन्होंने अपनी कविताओं में जो बिम्ब प्रस्तुत किए है वह दैनिक जीवन से संबंधित है। कवि ने इस कविता में अकाल और उसके बाद के समय की स्थितियों का अत्यंत सूक्ष्म चित्रण किया है। घर पर अनाज न होने पर घर के सदस्यों की उदासीनता तथा अनाज होने पर उनकी प्रसन्नता का ज्ञान न केवल मानवों में देखा जा सकता है अपितु मानवेतर प्राणियों में भी इन स्थितियों की प्रतिक्रिया अनुभव की जा सकती है। यह प्रतिभा कवि ने कानी कुतिया, छिपकलियां और कौए के माध्यम से व्यक्त की है। यह कविता ग्रामीण समाज का चित्र प्रस्तुत करती है जिसमें निर्धन वर्ग की विवशता का बखान प्रस्तुत किया गया है। प्राकृतिक आपदा के कारण पीसे निम्न वर्ग का रूप चित्रित किया गया है।

कवि बुनिया की स्थिति के दो चित्र पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। एक चित्र अकाल के दिनों का है। इन भीषण दिनों में घर के सदस्यों की दुखद स्थिति की ही तरह मानवेतर प्राणियों पर भी यह प्रभाव दिखाई पड़ रहा था। भूख से व्यथित घर की कानी कुतिया टुकड़ा पाने की आस में चक्की के पास सोती रही। इसकी वजह यह थी कि न तो चूल्हा ही गर्म हो पाया और न चक्की से पिसाई हुई। घर का वातावरण इतना उदास और निराश था कि छिपकलियां दीवारों पर दौड़ती रही, उन्हें खाने के लिए खोड़े-मतौड़े तक नहीं मिले। अकाल के दिनों में घर का ऐसा हाल था कि बेचारे चूहे तक ऐसे रहे, जैसे वे बाजों हार गए हैं। अकाल के दिनों में हालत यह थी कि घर के प्राणियों अर्थात् नर-नारियों

Scanned by CamScanner

परिवर्तन नहीं होगा।

रघुवीर सहाय बहुत सावधान अपनी कविता को कला से बचाते हैं। उनकी कविता में जो नय
रघुवीर सहाय परिवर्तन को आवश्यक समझते हैं।
है वह सावधान है। रघुवीर सहाय परिवर्तन की
इन सारे सूत्रों पर विचार करने से कुछ प्रश्न उठते हैं। क्या रघुवीर सहाय परिवर्तन की संभावना स्वीकार करते हैं? परिवर्तन के लिए क्या चीज जरूरी है? परिवर्तन के लिए सबसे पहली शर्त है कि जो समाज में पीड़ित हैं वे संघटित हों, पीड़ा क्यों है इसे समझें। इसलिए पीड़ा के स्रोत की जानकारी हो और उसे दूर करने के कार्यक्रम जरूरी हैं। इन्हीं शर्तों के भीतर से परिवर्तन की वास्तविक प्रक्रिया जन्म ले सकती है।

एक जगह रघुवीर सहाय ने अपनी कविता में क्रांतिकारी नेताओं की भी आलोचना की है। क्रांतिकारी लेखक के लिए लिखा:

"क्रांतिकारी लेखक को आशा है
कि औरों पर उसका अविश्वास
उसको तो उसके जीवन में
एक बड़ा आदमी बना देगा।"

दूसरी कविता में लिखा क्रांतिकारी नेता को लेकर:

"क्रांतिकारी नेता की
ऊँचे वर्गों में लोक प्रियता कम हो गयी
कारण कई थे
एक ऊँचे वर्ग कई वर्षों से और सुरक्षित हो गए थे
दूसरे क्रांतिकारी भी उसी वर्ग में पहुँच गया था"

रघुवीर सहाय इस तरह से क्रांतिकारी वैकल्पिक राजनीति को भी उतना ही अवसरवादी मानते हैं। उनके अनुसार राजनीति क्रांतिकारी नहीं हो सकती। उसके दो ही रूप हैं- सत्ता और प्रतिपक्ष। इस तरह राजनीति का अर्थ ही है – अवसरवाद, अविवेक, स्वार्थ राजनीति के बारे में रघुवीर सहाय का यह आम रवैया है। इसी अर्थ में रघुवीर सहाय राजनीतिक प्रक्रिया की समीक्षा करनेवाले राजनीतिक कवि हैं, लेकिन राजनीति मात्र को अस्वीकार करते हैं। यही रघुवीर सहाय की राजनीतिक चेतना का सार तत्व है।

राजनीति जो सत्ता की है वह या तो आम राय से या बर्बरता से अन्याय कायम रखने की सत्ता है। दूसरी ओर प्रतिपक्ष के पास विरोध की भाषा है, उत्तमयी ओज की भाषा है, लेकिन इनका एजेंडा जनता की जरूरतें नहीं बल्कि सत्ता तय करती है:

बहस करेंगे आज
लेकिन कार्यसूची के अनुसार

सारी राजनीति व्यर्थ है। इसलिए रघुवीर सहाय राजनीतिक विकल्प में कविता की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं:

कविता अकेले ही काम करने का
तकाजा करती है।

राजनीति संघटित कार्यकलाप की विधा है और कविता अकेले काम करने का तकाजा करती है। संघटित राजनीति के विकल्प में अकेले काम करने की कविता विवेक है। जनता संघटित होकर लड़ती नहीं और क्रांतिकारी राजनीति जनता को यदि संघटित करती है तो उसका इस्तेमाल करती है। [illegible] में जनता की पीड़ा का मूल्य क्या है? वह कहाँ व्यक्त हो? उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम क्या है?

रघुवीर सहाय कविता में जनता की पीड़ा को अभिव्यक्त करने का उत्तरदायित्व संभालते हैं। राजेश जोशी ने रघुवीर सहाय पर एक लेख में कहा था कि रघुवीर सहाय ने नारी बिंब की चर्चा की थी। उनके यहाँ जिस नारी का चित्रण है वह पीड़ित नारी है, जुझारू नहीं है। इसी बात को दूसरी तरह से कहें तो रघुवीर सहाय के यहाँ पीड़ित व्यक्ति तो है, लेकिन जुझारू व्यक्ति नहीं है। "रामदास" कविता में हत्या, क्रूरता, हिंसा निर्द्वन्द्वता है जो समाज पर शासन कर रहे हैं, लेकिन इनका प्रतिरोध नहीं है और अब प्रतिरोध का वह संकल्प भी नहीं है। यहाँ एक निश्चित, पूर्वनिर्धारित अनिवार्य हिंसा है। रामदास जानता है यह है लेकिन फिर भी उसका बलि चढ़ता है। सहाय जी ने लिखा :

फटा सुथन्ना पहने
[illegible]

Scanned by CamScanner

वहाँ के किसानों ने अपनी मेहनत से उपजाए हुए धान्य, मसलन [illegible] फूल-फल और कंद-मूल...आदि ने मुझे पाला-पोसा है. उनका मुझपर अपार ऋण है. मैं उनका ऋण चुका नहीं सकता. और विडम्बना यह है कि मैं आज उनसे दूर आ पड़ा हूँ. यहाँ सब चीजों के रहते हुए भी कवि आत्मीयता और अपनापन नहीं अनुभव करता है. वह कहता है कि यहाँ भी कोई काम रूकता नहीं, मैं असहाय नहीं हूँ और अगर मर जाऊँगा तो लोग चिता पर दो फूल भी डाल देंगे, लेकिन यहाँ प्रवासी ही माना जाऊँगा, यहाँ रहकर भी यहाँ का नहीं बन पाऊँगा. स्मृति में ही वह पत्नी से कहता है कि तुम्हें जब मेरी मृत्यु की सूचना मिलेगी तो तुम्हारे हृदय में वेदना की टीस उठेगी. तुम तस्वीर में मुझे देखोगी और मैं कुछ नहीं बोलूँगा. अपनी इस भावना को सूर्यास्त के बिम्ब के माध्यम से और भी मार्मिक बनाते हुए नागार्जुन कहते हैं कि शाम के आकाश के पश्चिम छोर के समान जब लालिमा की करुण गाथा सुनता हूँ, उस समय तुम्हारे सिंदूर लगे मस्तक की और भी तीव्रता से याद आती है. कविता तीन खण्डों में रची गई है. पहले खण्ड में कवि अपने अकेलेपन के अनुभव के बारे में बताता है. यहाँ वह अपने प्रवासी होने की स्थिति को अस्वीकार करता है और कहता है कि मैं मनुष्य हूँ, निर्जीव पत्थर नहीं हूँ जिसे भाग्य जहाँ चाहे उठाकर फेंक दे. दूसरे खण्ड में पत्नी जिस गाँव में है वहाँ का पूरा सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण कवि के मानस पटल पर उभरता है. इस परिचित और प्रिय वातावरण के सम्मोहन से कवि आन्तरिक शक्ति संचित करता है. तीसरे खण्ड में वह अपने बचपन की याद करता है. तरउनी के निवासियों के उपकार के प्रति कृतज्ञता से भर जाता है और इसीलिए तत्काल विदेश में अपनी उपस्थिति के प्रति क्षोभ व्यक्त करते हुए मृत्यु की कल्पना करता है. इन तीनों खण्डों के केन्द्र में स्थित है कवि की पत्नी, जिसके सिंदूर तिलकित भाल की स्मृति से कवि का स्वच्छंद चिंतन फूटता है.

कवि ने पत्नी के लिए "सिंदूर तिलकित भाल" का बिम्ब चुनकर कलात्मक कल्पना का ही परिचय नहीं दिया है, बल्कि अपने प्रेम को भारत –खासकर उत्तर भारत- की सांस्कृतिक विशिष्टता के माध्यम से पारिभाषित भी किया है. सिंदूर विवाहित स्त्री के सुहाग का प्रतीक है. नागार्जुन अपनी पत्नी का सुहाग हैं. वे पत्नी के मस्तक पर सुहाग के चिह्न को ही प्रेम के प्रतीक के रूप में चुनते हैं. सिंदूर उनके लिए संस्कृति की एक रूढ़ि भर नहीं है, वह संबंधों

Scanned by CamScanner

र तिलकित भाल की व्याख्या

जनता की जातीय संस्कृति से भी कितना गहरा प्रेम करते हैं. विदेश में रहना उनके लिए कष्ट और वेदना का कारण इसलिए है कि उन्हें अपने देश की जनता, प्रकृति और संस्कृति से गहरा प्रेम है. पत्नी का परम अंतरंग संबंध इस प्रेम का प्रतीक है. यही कारण है कि कविता में कवि की सभी कल्पनायें और भावनायें पत्नी के सिंदूर तिलकित भाल को केन्द्र में रखकर ही प्रकट हुई हैं.

नागार्जुन ने पत्नी को अपने सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण से काटकर अस्वस्थ रूप में अपनी चिंता का विषय नहीं बनाया है. कालिदास के दुष्यंत जब शकुंतला के विरह से क्षुब्ध होते हैं और चारण लोग शकुंतला का एक चित्र उन्हें देते हैं तो वे पूछते हैं कि इसमें कण्व ऋषि का आश्रम कहाँ है, वह ताल कहाँ है जिसके तट पर एक हिरणी अपने सींग से हिरण की आँखों की ओर खुजला रही है? इन सबके बिना शकुंतला नहीं हो सकती. इस चित्र में ये सब नहीं है, इसलिए यह शकुंतला का चित्र नहीं है. नागार्जुन की पत्नी भी तरउनी गाँव, वहाँ के लीची, आम, कमल, कुमुदिनि, तालमखान, वहाँ के नाम-गुण के अनुसार नामों वाले निवासियों के बिना नहीं हो सकती. अकारण नहीं है कि नागार्जुन कालिदास के भोगवादी चित्र की उपेक्षा करके *कालिदास* कविता में उन्हीं प्रसंगों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं जहाँ सच्चे प्रेम-संबंधों से उपजी वास्तविक करुणा है.

नागार्जुन की कला की विशेषता यह है कि वे कला को सजा-संवार कर पेश करने की जगह भावों की उदात्तता और विचारों की स्वस्थता पर अधिक बल देते हैं और पाठक में एक स्वस्थ संस्कार उत्पन्न करते हैं.

----------प्रो. अजय तिवारी से साभार

आप देख सकते हैं इनकी पुस्तक *नागार्जुन की कविता*

Posted by भास्कर रौशन at 2:17 PM

3 comments:

जितेन्द्र भगत said...

nice

August 14, 2008 6:32 PM

जितेन्द्र भगत said...

Scanned by CamScanner

भी। कुछ न होते हुए भी अपने को बहुत कुछ समझने वाला प्रजातांत्रिक समाज व्यवस्था के नेतृत्व, नियंत्रण तथा समीकर्ता का दंभ भरने वाला। रघुवीर सहाय ने इस संवेदना को पूरी शिद्दत के साथ जीया भी है, भोगा भी है और इसी को उन्होंने अपनी कविता में व्यक्त भी किया है।

समसामायक राजनैतिक परिवेश का संकट एक संवेदनाशील विचार-तत्व बन कर रघुवीर सहाय की कविता में उभारा है। आज की राजनीति इतनी भयावह हो गई है–इतनी घातक और प्राणलेवा हो गई है कि वह पूरे के पूरे देश की नसों में बहते खून को सोख लेती है। रघुवीर सहाय का जागरूक और संवेदनशील पत्रकार-मन इसे तहेदिल से महसूस करता है और बगैर किसी लाग-लपेट के सीधी-सीधी वाणी में इसे व्यक्त भी करता है। अमानवीय तत्वों की व्यक्ति-वादिता और सर्वग्रासी विनाश की छाप ने मानवीय सर्जनात्मक क्षमता को, पुराने रागात्मक संबन्धों की पूरी तरह से बदल कर रख दिया है। आज व्यक्ति को अपने और समाज के जीवन में हर स्तर पर झूठ, पाखंड, आडम्बर, ढोंग, अवसरवादिता, भ्रष्टाचार दिखाई देता है–इसमें पूरे का पूरा देश बह रहा है। ईमानदार, निष्ठावान और समर्पित व्यक्ति कुछ नहीं रह गया है। वह पिस रहा है। एक सामाजिक/राजनैतिक त्रासदी चारों तरफ व्याप्त है। हम सब एक अनन्त ट्रेजेडी का हिस्सा बन चुके हैं यह 'ट्रेजेडी' कब खत्म होगी, कहाँ खत्म होगी किस-बिन्दु पर जाकर खत्म होगी कुछ कहा नहीं जा सकता। रघुवीर सहाय ने इसी ट्रेजेडी को अपनी कविताओं में उभारा है। इस नीच ट्रेजेडी से आहत हम सबकी मूल संवेदना पूरी तरह कलुषित है, आकांत है। एक अजीब सा दर्द निमाग के चारों तरफ घिर आया है। यही कारण है कि आज की कविता एक प्रकार से राजनैतिक कविता है। रघुवीर सहाय की कविता की मूल संवेदना इसी अर्थ में राजनैतिक/सामाजिक है। व्यक्ति और व्यक्ति के भाव से समुदाय राजनीति का भोक्ता है–वह प्रचार, जुलूस, आंदोलन जलसों में चाहे-अनचाहे भाग लेता है। अगर वह जुआ तुड़ाकर बैल की तरह भागना भी चाहे, तो भाग नहीं सकता। राजनीति के कुशल लट्ठबाज उसे घेरघार कर पुनः थाने पर ले आते हैं–जागरूक कवि इसे देखता है, पहचानता है–इसके खिलाफ़ आवाज़ भी उठाता है पर जानता है कि वह उसे बदल नहीं सकता। हाँ, वह अपनी शहादत दे सकता है। आत्महत्या कर सकता है। सब कुछ भूलने भुलाने का बहाना कर सकता है–पर वर्तमान की त्रासदी को बदलना उसके क्या किसी के भी बूते की बात नहीं है। वह जनसमूह में कूदता है, जनता का सहयोगी सहकर्मी भी बनता है लेकिन हर तरह की जोखिम उठाकर भी, हर तरह का विद्रोह करते हुए भी कुछ यथेष्ठ नहीं कर पाता। कुछ न कर पा सकने की यह संवेदना रघुवीर सहाय की कविताओं में भरपूर देखने को मिलती है। मानवद्रोही राजनीति का विरोध रघुवीर के काव्य की मूल-संवेदना है। उसने अपनी कविताओं के माध्यम से आज के आम आदमी की ज़िंदगी पर एक सार्थक बहस छेड़ी है। रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं मे नए-सिरे से कवि कर्म करते हुए जीवन के नए-नए संबन्धों की तलाश का उपक्रम किया है। जीवन की दाहरी-भीतरी वास्तविकताओं को समझने/परखने की कोशिश की है। कवि ने अपनी, हम सबकी परिचित दुनिया के अनुभव से एक सीधा संवाद स्थापित किया है। रघुवीर सहाय समकालीन कविता का एक सशक्त हस्ताक्षर है। भड़कीली लफ़्फ़ागी या कोरी शब्दिता सहाय को बर्दाश्त नहीं है। काल्पनिक अद्वितीय सौंदर्य-बोध रघुवीर सहाय

Scanned by CamScanner

की कविता में नहीं मिलेगा। उसके लिए यह मृग-मरीचिका एकदम थोथी और बकवास है। अहसास के साथ भरोसे की बात पर बल देना रघुवीर सहाय की कविता में है–

"बीस बर्ष खो गए
भर में उपदेश में
एक पूरी पीढ़ी जनमी पली-पुसी क्लेश में
बेगानी हो गई अपने ही देश में
वह अपने बचपन की
आजादी छीनकर लाऊँगा।"

मानव यंत्रणा का फैलाव, बेलौस कथन रघुवीर सहाय की कविता में गहरे संवेदना बोध के स्तर पर किया गया है। रघुवीर सहाय की कविता में सुयन्ना संभालती जनता ही नहीं है, बेबू मगर, गोबा, मैकू, रामधुन, रामगुलाम, नेताराम, भोलार,मदास, दिग्विजय नारायण सिंह के साथ-साथ मोरारजी देसाई, विनोबा, नेहरू और लोहिया भी हैं। यहाँ आँख मारते गृहमंत्री, जीवनदायी, तोंदल-संसद सदस्य खिसियाते कुलपति, विचियाते उपकुलपति, भुरूड़ा-विचारक, अभिरामभाषाविद्, कुकुआते राजकवि, राष्ट्रकवि, मंचकवि, अकादमी-कवि, दुम हिलाते-फुदकते संपादक, भीख गाती हुई दुधमुँही बच्ची मैले नाखून वाला चीकट लड़का है। और तो में तेज़तर्रार महंगी मचलती नारियाँ हैं और पोली कन्याएँ हैं–साली, चाचियाँ हैं। एक खुर्राट चलते-पुर्जों की मक्कार-बुढ़ऊ-परिषद् है, अकादमी है, स्तन हिलाते राजनैतिक दल हैं– कवि ने अपने चारों ओर के देशव्यापी राजनैतिक/सामाजिक परिवेश के यथार्थ को एक दम अपनी कविता में उभार दिया है। यथार्थ का इतना सटीक प्रस्तुतीकरण किया है कि वह एकदन सर्वेश्वर, मुक्तिबोध, धूमिल, या राजकमल चौधरी की पंक्ति में जा बैठता है। उसकी कविता का यह यथार्थ हर शहर, गली, चौराहे, गाँव चौबारे, संस्था, संसद, बाज़ार, विद्यालय-हर जगह मौजूद है। उसकी कविताओं के प्रतीक एकदम नए, ताजे और खनखनाते सिक्के की तरह शुद्ध सटीक हैं। राजनैतिक संवेदना का एक तरोताजा उन्मेष रघुवीर सहाय की कविताओं में देखने को मिलता है। कवि के काव्य की मूल संवेदना राजनैतिक है और एकदम यथार्थ परिवेश व्यंजक है।

□□

3.

रघुवीर सहाय की कविता का प्रतिपाद्य (भाव-पक्ष)

रघुवीर सहाय के पाँच कविता संग्रह प्रकाशित हैं। इधर-उधर छपी अनेक फुटकर कविताएँ भी हैं (गद्य साहित्य एवं पत्रकारिता के व्यवसाय में रहने के कारण बीसियों गद्यात्मक रचनाएँ अलग हैं) इन सबमें कवि ने अपने साठ वर्ष के राजनैतिक/सामाजिक परिवेश के अनुभवों से ही पीड़ित/प्रेरित होकर अपनी अनुभूति को वाणी दी है। रघुवीर सहाय के संपूर्ण काव्य में व्यक्ति, समाज और परिवेश का राजनैतिक/सामाजिक व वैचारिक पर्यवेक्षण किया गया है। उनकी कविताओं में 'हत्या', 'आत्महत्या' जैसे शब्दों का विपुल प्रयोग हुआ है, और ऊपरी तौर पर

है। सब कुछ सहज है, सब आश्वस्त है–दिन में भरे बाज़ार में एक हादसा होता है और एक बंधा हुआ छंद एक मंथर लय, यथार्थ के आकलन की एक पत्रकार शैली पूरे घटनाक्रम को अत्यंत क्रूर, नृशंस और गहरा बना देती है। हर पाँचवीं पंक्ति में बार-बार दोहराया जाता है, 'हत्या होगी' मानों 'वंदेमातरम्' या देशदर्शन से जुड़ा कोई नारा हो जिसे 'हत्या' (आत्महत्या) के खेल से जुड़े लोग एक ही रस की तरह गा रहे हों और आनंदित हो रहे हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि अपराध आज के मूल्यहीन जनतंत्र की दिनचर्या का सामान्य कर्म हो चुका है–इस तथ्य को रघुवीर सहाय ने अपनी कविता में बार-बार प्रतिपादित किया है। हत्या चाहे रामदास की हो या खुशीराम की। पक्ष-विपक्ष स्पष्ट है–

"मारो मारो ओर वा मारो
एक ओर साहेब था
सेठ था, सिपाही था
एक ओर मैं था
मेरा पुत्र और भाई था
मेरे पास आकर खड़ा हुआ एक राही था।"

मजा यह है कि हत्या होती है, हत्या की जाती है–पर उसकी कहीं कोई फरियाद नहीं है। जो मनुष्य मरा है। मारा गया है उसकी कोई भाषा नहीं है और जब उसका प्रतिनिधि उसकी हत्या की करुण कथा कह रहा होता है तब–

"हँसती, है सभा,
तोंद मटका, ठठाकर
अकेले अपराजित सदस्य की व्यथा पर।"

जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, रघुवीर सहाय की कविता में 'हत्या' शब्द का प्रयोग एक अत्यन्त व्यापक प्रतीकार्थ में हुआ है। यह हत्या व्यक्ति की अस्मिता की हत्या है, जनतंत्र की हत्या है, मानव-मूल्यों की हत्या है, सृष्टि के यथार्थ की हत्या है, सत्य की हत्या है, न्याय की हत्या है, जीने और पनपने के प्रकृत अधिकार की हत्या है, मानवीय अधिकारों की हत्या है, 'ह्यूमन राईट्स' की हत्या है। हत्या केवल चाकू या छुरे से ही नहीं की जाती अपितु जो दबकर मर जाता है, जिसे परिस्थितियाँ लील जाती हैं–जिसे राजनीति निगल जाती है वह भी हत्या ही है! जो रोज़ मर-मर कर जी रहे हैं–वस्तुतः वे हत्या/आत्महत्या के दौर में से ही गुजर रहे हैं। जब आदमी की लालसा मार दी जाए उसकी जिजीविषा नष्ट हो जाए। उसका स्वत्व छिन जाए, सत्य कुचल दिया जाए–आम आदमी की बोलने की आज़ादी पर भी पाबन्दी लगा दी जाए, तो वह आदमी या ऐसा समुदाय जीवित रहते हुए भी मरे के समान हो जाता है यही हत्या है–आत्महत्या है–इसी के विरुद्ध कवि ने यथार्थ दर्शन करते हुए आवाज उठाई है उसने ऐसे ही रोज़-रोज़ रिस-रिस कर मरते हुए आदमी की त्रासदी को अपनी कविताओं व्यक्त किया है–

"बीस बरस बीत गए
लालसा मनुष्य की तिल-तिल कर मिट गई।
x x x x

क्योंकि उनमें जीने की आस नहीं रही थी
तुमने मार डाले लोग
क्योंकि वे बहुत सारे लोग थे
इसी तरह के बहुत सारे लोग

x x x

जो शरीर सूखे मरे पाए गए
उनमें जाने कितने कलाकारों के थे
उनकी कोई रचना छपी नहीं थी बल्कि
उनकी कोई रचना हुई नहीं थी क्योंकि
अभी उन्हें करनी थी
दो हज़ार वर्ष के अत्याचार के नीचे से उठकर
उन्हें एक दिन करनी थी रचना
इसके पहले ही वे मारे गए।"

अभावग्रस्त मध्यवर्गीय या निम्नमध्यम अथवा निम्नवर्गीय ज़िन्दगानी के अनेक त्रासद बिंब रघुवीर सहाय की कविता में भरपूर मिलेंगे। वस्तुतः मध्यवर्गीय आम आदमी के जीवन, चिंतन और विवशतापूर्ण यथार्थ की त्रासदी का चित्रण करना ही कवि का लक्ष्य है, अभिप्रेत है। वह इस अभाव के प्रति अपने पाठकों को सचेत करके जागरूक करके प्रकारान्तर से उन्हें इसके खिलाफ़ मुहिम छेड़ देने के लिए उकसाना चाहता है। मामूली ज़िन्दगी के बीसियों चित्र रघुवीर की कविता में हैं। भीख में मिले मुट्ठी भर दानों पर जिंदा रहने के लिए विवश दुधमुँही बच्ची, जिसे दूध नसीब नहीं है–तो लोहे (चने) के दाने ही सही। पैदल ही सड़क पार करने का जोखिम उठाता काला नंग-धड़ंग बच्चा। सहमी-सहमी सी डरी हुई लड़की। रिक्शा खींचता मजदूर। अपने अपने सलीबों पर टंगी हुई औरतें। खाँसता हुआ फल-विक्रेता। पतले-दुबले-बौदे से आदमी जो अपने हक के लिए आवाज निकालने की भी हिम्मत नहीं बटोर पाते। लंगड़ा-बूढ़ा आदि। ऐसा ही एक चित्र ध्यातव्य है–

"देखो सड़क पार करता है पतला दुबला बोदा आदमी
आती हुई टरक (ट्रक) का इसको डर नहीं
या कि जल्दी चलने का इसमें दम नहीं रहा
आँख उठा वह देखता है डरेवर (ड्राईवर) को
देखो मैं ऐसे ही चल पाता हूँ।
मैंने इस तरह के आदमी दस बरस पिछले के मुकाबले बहुत देखे
जिनको खाने को पूरा नहीं मिला बरस-भर
कैसे भी, पहुँच जाते हैं दफ़्तर वक़्त से
घर लौट आते हैं देर-सबेर (सही)
परवालों को कभी अस्पताल में पड़े नहीं मिलते हैं।

x x x x x

औरतें बांधे हुए उरोज

कवि ने स्वयं अपनी रचना-प्रक्रिया में अकेलेपन के अनुशासन से निःसृत अपनी प्रतिपादनीय विचारधारा का सांकेतिक विश्लेषण करते हुए 'आत्महत्या के विरुद्ध' नामक काव्य संग्रह में कहा है। "सबसे मुश्किल और एक ही सही रास्ता है कि मैं सब सेनाओं से लड़ूँ। किसी में ढाल सहित, किसी में निष्कवच होकर, मगर अन्त में मरने सिर्फ अपने मोर्चे पर हूँ। (रहूँ) अपने भाषा के, शिल्प के और उस दोतरफा जिम्मेदारी के मोर्चे पर जिसे साहित्य कहते हैं। ..... मैं बदमाशों, गधों, आधे-पागलों और मक्कारों के लिए एक जिम्मेदारी महसूस करता हूँ। पर जो कुछ मैं रचता हूँ सिर्फ अपनी जिम्मेदारी पर रचता हूँ ..... या फिर नहीं रचता।" रघुवीर सहाय ने अपनी रचना का उद्देश्य भी स्पष्ट कर दिया है और अपनी कविताओं का लक्ष्य भी स्पष्ट कर दिया है। साथ ही उस शक्ति, उस फोर्स का भी अता-पता बता दिया है, जो कवि को साहित्य के समर-क्षेत्र में उतरने के लिए विवश कर देती है। कवि अपनी कविता को 'अपने हाथ की छटपटाहट' कहता है। वह बेचैन है–यह बेचैनी वह पूरे समाज में देखता है, अपने चारों ओर देखता है, पूरे देश में देखता है। वह इसी बेचैनी को व्यक्त करता है–

"मरते मनुष्य के बारे में क्या करूँ
क्या करूँ मरते हुए मनुष्य का।"

x x x x

इस महान देश में क्या करें, कहाँ जाएँ
घबराते लड़के, गदराती औरत लेकर

x x x x

क्या तोड़ूँ, क्या तोड़ूँ, जो मुझे
अपनापा मिले समुदाय में।

x x x x

कुछ होगा, क्या होगा अगर मैं बोलूँगा
न टूटे, न टूटे तिलिस्म सत्ता का
मेरे अन्दर एक कायर तो टूटेगा, टूटेगा।

x x x x

एक बार जानबूझ कर चीखना होगा
ज़िन्दा रहने के लिए दर्शक दीर्घा में से।"

सामाजिक यथार्थ का यथावत् आकलन करना रघुवीर सहाय की कविता का प्रतिपाद्य है। भीड़, संसद, चुनाव, मतदान, जुलूस, नारेबाजी, सड़क, बाज़ार आदि की बात करते हुए वे समाज को/आम आदमी के संदर्भ को कभी नहीं भूलते। कविता और राजनीति के सम्बन्धों का जितना अच्छा प्रतिपादन रघुवीर सहाय के काव्य में हुआ है उतना हिन्दी के अन्य आधुनिक या समकालीन कवियों में कम-ही देखने को मिलता है। राजनीति के साथ सीधे साक्षात्कार की काव्यात्मकता रघुवीर सहाय की रचनाओं में ही मिलती है। उन्होंने पूरे के पूरे शासनतंत्र की बखिया उधेड़कर फेंक दी है। प्रशासन और भ्रष्ट नेताओं को एकदम नंगा कर दिया है, बेनकाब कर दिया है। वह जनता को, भीड को उनकी बदहवासी वृत्ति पर कटाक्ष भी करता है। 'आत्महत्या के विरुद्ध' की कविताओं में सारे चेहरे मिल जाएँगे, सारे बिंब मिलेंगे–महासंघ का फोटो थुल-थुल (भ्रष्ट) अध्यक्ष, मंथर गति से भटकता हुआ (पराजित) मं

Scanned by CamScanner

सिकुड़कर सिंहासन भर रह जाए, तो भी वह सब कुछ है।
राजा ने अपने मन में कहा, जो राजा प्रजा की दुर्बलता नहीं पहचानता
वह अपने देश को नहीं बचा सकता
प्रजा के हाथों से।"

कवि ने प्रकारान्तर से भारत में व्याप्त समाजवादी ढोंग, भाई-भतीजावाद, सुविधा की राजनीति, संसदीय प्रणाली की कमियाँ, बुद्धिजीवियों का दिखावटी विद्रोह तथा खोखली बयानबाजी, हँसोड़ों तथा मसखरों की चापलूसी और किंकर्तव्यविमूढ़ जनता को अपनी कविताओं में खुलकर व्यक्त किया है। इस संदर्भ में दूसरे सप्तक (1951) के कवि के अपने ही वक्तव्य का एक उद्धरण प्रस्तुत करना असंगत न होगा। रघुवीर सहाय स्वयं कहते हैं–"शमशेर बहादुर का यह कहना मुझे बराबर याद रहेगा कि जिंदगी में तीन चीजों की बड़ी ज़रूरत है–ऑक्सीजन, मार्क्सवाद और अपनी वह शक्ल जो हम जनता में देखते हैं.....मैंने अपनी कविता के इस चरण तक पहुँचते-पहुँचते शैली में ताल और गति के कुछ प्रयोग कर पाए हैं.....भाषा को भी साधारण बोल-चाल की भाषा के निकट लाने की कोशिश रही है.....विचार-वस्तु का कविता में खून की तरह दौड़ते रहना कविता को जीवन और शक्ति देता है और यह तभी संभव है जब हमारी कविता की जड़ें यथार्थ में हों।" कवि रघुवीर सहाय ने स्वयं स्पष्ट कर दिया है कि यथार्थ का वैचारिक आकलन उनका लक्ष्य है और यही उनकी समस्त कविताओं का प्रतिपाद्य भी है।

वस्तुतः रघुवीर सहाय की कविता राजनैतिक कविता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वे किसी विशेष राजनीति-दर्शन से प्रतिबद्ध होकर लिखने गए हैं या उन्होंने अपनी कविता में किसी मत/वाद विशेष या राजनैतिक विचारधारा विशेष का आरोपित अनुशासन किया है। उनकी कविता न तो किसी वाद का ही प्रचार करती है, न ही किसी दल का समर्थन। वह प्रगतिवादी मुहावरे के अर्थ में प्रगतिवादी भी नहीं हैं, मार्क्सवादी भी नहीं है और तो और वह अभिजात्यों की राष्ट्रीयता के अनुरूप राष्ट्रवादी भी नहीं हैं, फिर भी उसमें प्रगतिशीलता है, राष्ट्रधर्मिता है, सामाजिकता है–समाजवादिता नहीं। उनकी कविता वर्तमान भ्रष्ट राजनीतिक तंत्र में दम तोड़ते आम आदमी की व्यथा को पूरी ईमानदारी, तल्खी और बेहद गुस्से के साथ पेश करती है। उनकी कविता की असली जमीन आज़ादी के बाद की शोषित महानगरीय ज़िन्दगी है, जहाँ आम आदमी दो रोटी जुटाने के लिए अपना सब कुछ दाँव पर लगा देने की त्रासदी भोग रहा है–जहाँ मतदाता के सिर पर पूरे पाँच साल कम एक दिन (चुनाव का दिन छोड़कर) उसी का चुना हुआ नुमाइन्दा जूता बजाता है। जहाँ देश के सर्वोच्च सदन में बैठे हुए भेड़िए इस बात पर बहस करते हैं कि भेड़ों के समान आम आदमी को बंदरबाट किस तरह की जाए। रघुवीर सहाय ने रचना की शर्त को स्वीकार करते हुए राजनीति के इसी भौंडे रूप को अपनी कविताओं में उजागर किया है। राजनीति जो जनतांत्रिक जीवन व्यवस्था में जननीति का ही पर्याय हो जाती है, रघुवीर सहाय की कविताओं का प्रतिपाद्य है। 'आत्महत्या के विरुद्ध' में दिए गए अपने वक्तव्य में कवि ने स्वयं कहा है–"राजनीति की ओर मेरा यही रवैय्या है संकटकालीन रवैय्या कह लीजिए–'कि वह बहुत जरूरी है या वह फिजूल है'–दोनों फतवे संक से भागने के बहाने हैं–वह बहुत जरूरी है, पर मैं भी अपने लिए बहुत जरूरी हूँ–अपनी उ

Scanned by CamScanner

वह घटना के गतिमान स्वरूप का भावन कराती है। कवि एक रिपोर्टर की तरह, एक कैमरामैन की तरह भाषा के लैन्स से अपने पात्र को, उसके परिवेश को देखता चलता है–अपनी ओर से यथार्थ स्थिति पर कोई मुलम्मा नहीं चढ़ाता, किसी विचार का भाषिक आरोपण नहीं करता, कोई तफ्फाजी नहीं करता। शब्दों, वाक्यों, ध्वनियों को गढ़ता नहीं तत्सम/तद्भव के पचड़े में पड़कर सचेत, सजग, कटी-छँटी, संवारी हुई संरचना के पेच नहीं लड़ाता। वह एकदम जो देखता है, सुनता है, महसूस करता है–उसे सीधी सपाट भाषा में कह देता है–पर उसका शब्द-प्रयोग इतना लहीम-शहीम होता है, अनुभव की चाशनी में पगे हुआ आम आदमी की अन्दर से फूटती बोली से इतना अभिन्न होता है कि रघुवीर सहाय का वाक्य (शब्द) ही अभिनीत नहीं होता, उसे लिखे जाने का ढंग भी एक खास किस्म की नाट्य-सृष्टि कर देता है। रघुवीर सहाय के अर्थ और शैली का युग्म मिलकर एक नाटकीयता पैदा कर देता है। रघुवीर सहाय का वाक्य बाँकपन लिए हुए होता है, उसमें भाव-व्यापार अत्यन्त त्वरित होता है। कथन (अभिव्यक्ति) के प्रवाह में पड़कर वह जटिल होने लगता है। रघुवीर सहाय की भाषा में संवादी और विवादी परस्पर गुंथे हुए से लगते हैं। उसकी भाषिक संरचना की लय और शब्दों के क्रम का संगीत बड़ा अजीबोगरीब है। उसकी भाषा की लय सरल सांगीतिक नहीं है, जो विचार और अर्थ को डुबोकर केवल संगीत को ही प्रमुख कर दे। वस्तुतः उसकी भाषा ऐसी है जो कानों को बुरी भी नहीं लगती, लेकिन पाठक की चेतना को ठग लेती है। पाठक उसकी कविता को पढ़कर एक अबूझ गुस्से से, खीझ से भर उठता है। वह अपने को कहीं न कहीं कुछ कर गुजरने के लिए संप्रेरित सा प्रतीत होने लगता है।

रघुवीर साहित्य की कविता में वाक्य स्थितियों की जटिल बुनावट के साथ दो विपरीत स्थितियों और भावों के संयोग से जटिल तो हो ही जाता है, वह अधिक नाटकीय भी हो जाता है। रघुवीर सहाय की कविता में भाषा संशय का संवादन करती है। वह विचार-विश्लेषण के प्रति अधिक उन्मुख रहती है। 'सीढ़ियों की धूप' की भूमिका में अज्ञेय ने स्पष्ट लिखा है–"रघुवीर सहाय की भाषा की सहज प्रवहमान प्रसादमयता उसकी कविता में है–कविता के कथात्मक, नाटकीय विवेचन बिंदुओं में समय-समय पर टीप लिए गए अंतरालोकित वाक्यों में संघात के क्षण को पकड़ने की सजगता भी है। भाषा के संदर्भ में तो नहीं, पर उसके व्यवहार में मुझे लगता है कि सहाय जी भाषा के प्रवाह को कई तरह से, बार-बार रोकते हैं–झटके के साथ और इस तरह से उसके संगीत में संघात पैदा होता है। यहाँ जो संघात का झटका है, उसी से कविता में अर्थ अभिनीत होता है।" अज्ञेय ने रघुवीर सहाय की भाषा के नाटकपन को एकदम स्पष्ट कर दिया है। रघुवीर सहाय ने 'आत्महत्या के विरुद्ध' में भाषा के संगीत की बात कही है– "आधुनिक कविता में संसार के नए संगीत का विशेष स्थान है और वह आधुनिक संवेदना का आवश्यक अंग है, अपनी कुछ कविताओं में संगीत की खोज की है।" संसार का नया संगीत क्या है–कौन सा संगीत है जिसे कवि कविता में खोज रहा है वह कविता में संगीत पाता नहीं–खोजता है। यह वह संगीत है–जो घात-प्रतिघात से, संघात से बना है। पर बोलना बात को ही है। सहाय जी की कविता में संगीत की लय और बात कील लय/भाषा की लय एक दूसरे के विपरीत चलती हैं। संगीत संघात के साथ चलता है और भाषा चिंतन की लय के साथ चलती है। 'हँसो हँसो जल्दी हँसो' आपातकाल की रचना है। इसमें कोई भूमिका नहीं है, कोई वक्तव्य नहीं है। एकदम खालिस कविताएँ हैं–शुद्ध भावन कविताएँ–जैसे पूरी की पूरी रचना बिना किसी भूमिका के बोलने को संकटकाल बन गई है। संकट के समय वाणी को सान पर चढ़ाने के लिए कवि ने भाषा की मुद्रा बदली है–कविता के लिए कुछ नई शैलियों को भी गढ़ा है। इस संग्रह की कविताओं को पढ़ने पर सोचना पड़ता है कि क्या यह भाषा

Scanned by CamScanner

की भाषा भीड़ में घिरे एक अकेले आदमी के अकेलेपन के दर्द की भाषा है...

भाषातंत्र को तोड़कर एक ऐसी भाषा में अपने को पूरी सार्थकता और सफलता के साथ व्यक्त किया है, जिसमें हम सब सोचते हैं–अपने दैनन्दिन कृत्य करते हैं–अपने को बहुधा व्यक्त करते हैं–"अपने छायावादी समव्यस्कों के बीच बच्चन की भाषा जैसे एक अलग मजा/स्वाद रखती थी और शिखरों की ओर न ताक कर शहर के चौक की ओर उन्मुख थी, उसी प्रकार अपने विभिन्न मतवादी समव्यस्कों के बीच रघुवीर सहाय भी चट्टानों पर चढ़ नाटकीय मुद्रा में बैठने का मोह छोड़कर साधारण घरों की सीढ़ियों पर धूप में बैठने में प्रसन्न हैं। यह स्वस्थ भाव उनकी कविता को एक स्निग्ध मर्मस्पर्शिता दे देता है–जाड़ों के घाम की तरह उसमें तात्क्षणिक गरमाई भी है और एक उदार खुलापन भी, जिसमें और जिसको हम 'दे दिए जाते हैं।' कहने का अभिप्राय यही है कि रघुवीर सहाय ने सोलह आने जन-भाषा/देसी भाषा/हिन्दी की आम आदमी की भाषा को ही अपनाया है। भाषा की दृष्टि से कवि की 'इतने शब्द कहाँ हैं' नामक कविता पढ़ने योग्य है। उसकी भाषा में कृत्रिम मुहावरेदार गंभीरता नहीं है, अपितु एक बैलोस टटकापन प्रतीक और उपमा का यथार्थमूलक प्रयोग रघुवीर सहाय की कविताओं में मिलता है। 'सीढ़ियों पर धूप' में भाषा-शिल्प के अनेक नवीन प्रयोग देखने को मिलते हैं।

संप्रेषण की कठिनाई का जिक्र कवि ने अपने 'अन्तर्दृष्टि' के रिव्यू में दिया था। उसने स्पष्ट किया था कि 'आत्महत्या के विरुद्ध, की कविताएँ लिखते समय उसने इसे महसूस किया था। वह कहता कुछ था, कहना कुछ चाहता था पर लिख कुछ जाता था, हो कुछ जाता था। इसकी भाषा राजनैतिक मुहावरों की भाषा है, जो 'सरलीकृत भाषा' नहीं है। अपनी बोधगम्यता में यह पर्याप्त दुरूह है। इस संग्रह की अनेक कविताओं में कवि ने स्वयं संप्रेषण की जटिलता का जिक्र किया है–यह वस्तुतः साधारण बोलचाल की भाषा को सृजनात्मक स्तर पर प्रतिष्ठित करने की जटिलता है।

"शब्द, अब भी चाहता हूँ.....
पर वह कि जो जाए, वहाँ-वहाँ होता हुआ.....
तुम तक पहुँचे
चीज़ों के आरपार दो अर्थ मिलाकर सिर्फ एक.....
स्वच्छंद अर्थ दे, मुझे दे–"

जैसी उक्तियाँ इस बात की गवाह हैं कि स्वतंत्रता के बाद भाषा का दुरुपयोग हुआ है, भाषा का अवमूल्यन हुआ है–भाषा कोरे वादों/वायदों से भ्रष्ट हो चुकी है। कवि लाचार है, उसके हाथ में हथियार की जगह भाषा है। यह भाषा ही उसका हथियार है–इसी से उसने अपना और अपने हर आम आदमी का समर छेड़ना है' इसीलिए वह कह भी सका है–

Scanned by CamScanner

"न सही यह कविता
यह मेरे हाथ की छटपटाहट सही
यह कि मैं घोर उजाले में खोजता हूँ
आग–
जबकि हर अभिव्यक्ति
जली हुई लकड़ी है, न कोयला न राख।

रघुवीर सहाय ने ऐसे ही विचार बोध से आम भाषा को सर्जनात्मक बनाया है। उन्होंने अदेस शब्दों के प्रयोग भी खूब किए हैं तथा पूरी प्रासंगिकता के सौंदर्य को गला दिया है। कहीं-कहीं दिव्य शब्दों का प्रयोग उपालंभास्पद रूप में भी किया है जैसे–

"अत्याचारी हत्या किए जाए जब तक कि
स्वर्णपूति, स्वर्णशिखर से आकर–
आत्मा के स्वर्णखंड किए जाए।"

हिंदी के कतिपय जाने पहचाने अलंकारों का प्रयोग उन्होंने बड़े विलक्षण रूप में किया है, यथा–

अनुप्रास– "मरते मनुष्यों के मध्य खड़ा मक्कार मंत्री।
x x x x
मंथर भटकता मंत्री मुसद्दीलाल महंत मंच पर चढ़ा।
x x x x
गोल शब्दकोश में अनमोल बोल तुतलाते।"

"दूधपिए मुँह पोंछे आ बैठे, जीवनदानी गोंद/दानी सदस्य तोंद सम्मुख कर"–यहाँ 'गोंद' और 'तोंद में' अनुप्रास के साथ-साथ सदस्य की आकृति की उपमा 'गोंददानी' से दी गई है और वह भी उसे 'जीवनदानी' कहने के उपरान्त। पूरा कथन गहन साभिप्राय है, व्यंजनात्मक है।

श्लेष– "सेना का नाम सुन देशप्रेम के मारे
मेजें बजाते हैं
सभासद मद-मद
मद कोई नहीं हो सकती, राष्ट्र की।"

यहाँ 'सभासद' के साथ 'मद' की तुक नहीं बैठती। तीसरा 'मद' पहले के दो बार आए 'मद' शब्द से भिन्न अर्थ देता है–इसीलिए यहाँ श्लेष का चमत्कार है।

रघुवीर सहाय ने एकदम बेलौस और नंगी जिस जन-भाषा का प्रयोग किया है, उसमें रचनात्मकता का भरपूर संपुट दिया है। उन्होंने नई कविता की/प्रयोगवाद की भाषा के प्रचलित रूप को तोड़ा भी है। उन्होंने भिन्न प्रकार की शब्दावली ली है, उनका प्रयोग भी अधिक विलक्षण है। उनका वाक्य-विन्यास भी कुछ अलग किस्म का है। उनके वाक्य कहीं-कहीं बहुत छोटे हैं तो कहीं-कहीं बहुत लम्बे हो गए हैं। कहीं अधूरे रह गए हैं तो कहीं पूरे हैं या उससे भी आगे बढ़ गए हैं। उन्होंने विरामचिन्हों का प्रयोग लगभग नहीं के बराबर किया है–जिससे उनके वाक्य आपस में एक दूसरे से गुंथ गए हैं। उनके वाक्यों की स्वतंत्र सत्ता बहुत क्षीण है। इस तरह कवि ने एक वाक्य की अर्थ लहर को/एक वाक्य में व्यक्त भाव के करंट को दूसरे में पर्यवसित कर दिया है। वाक्यों का यह विलक्षण गठन एक प्रकार का मज़ा देता है। रघुवीर

Scanned by CamScanner

का खेल है या खिलवाड़पन। क्या यह सपाट बयानी है? यह संकट की ऐसी भाषा है जो अपनी तहों को लुकाकर ही अपने को खोलती चली जाती है। यह भी एक किस्म की वक्रोक्ति है—इसमें कामद-त्रासदी और त्रासद-कामदी के गुण युगपत् विद्यमान हैं।

शब्दों की मितव्ययता रघुवीर सहाय की शैलीगत विशेषता है। रघुवीर सहाय की कविता में अनावश्यक शब्दों का जंजाल देखने को नहीं मिलता। मितव्ययिता और अपव्ययिता शब्दों से सिद्ध नहीं होती। रघुवीर सहाय के पास शब्दों की कमी नहीं है—उनके वाक्य भी लंबे-लंबे हैं, पर वे अपनी बात को एक रिपोर्टर की तरह रिपोर्ताज की शैली में वर्तमान कालिक क्रिया पद या आसन्न-भूत क्रियापदीय शैली में अधिक कहते हैं—जिससे उनकी कविता में एक विशेष प्रकार की घटनात्मक नाटकीयता आ जाती है, जो उन्हें बहुत हद तक मुक्तिबोध की भाषिक-वृत्ति के नज़दीक पहुँचा देती है। उनकी कविता में शब्द और अर्थ का अनुपात एकदम संतुलित है।

रघुवीर साहित्य ने निषेधात्मक वाक्यों का खुलकर प्रयोग किया है। इसी से उन्होंने कथन में, व्यंजना-व्यापार में एक विशिष्ट नाटकीयता उत्पन्न की है। अपनी सामयिक स्थितियों से रघुवीर का पत्रकार बराबर भिड़ता रहा है—उसने कभी भी समझौता नहीं किया है। उसका यही आत्मसंघर्ष उसकी कवितार को आत्मीय बना देता है, साथ ही गहनता और दुर्बोध स्थिति का संधान भी वह कविता में करता है। यही उसकी कवित के फार्म की जटिलता को निर्धारित करता है। इसीलिए कवि कहे-अनकहे को रचने के लिए नई लय, नए तरह के वाक्य और एक नए प्रकार के संगीत का आयोजन करता है। मुखरता भी नहीं है और अनावश्यक भाषिक प्रयोग भी नहीं है। भाषा और विवेचना की दृष्टि से रघुवीर सहाय की कविता में वर्णन कम हैं परिस्थितियों/घटनाओं के यथावत् दृश्य कथन से उपजी टिप्पणियाँ अधिक हैं। शब्द किस तरह अपना मार्ग बनाते जाते हैं—इसे समझने के लिए 'अतुकांत-चंद्रकांत' नामक कविता पठनीय है।

रघुवीर सहाय में एक साथ दो प्रकार की शैलियाँ देखने को मिलती हैं। एक ओर सघन गद्यात्मक वाक्य की बुनावट और दूसरी ओर वाक्य की बेहद नाटकीय लयात्मकता। कुछ हद तक तुकांत बुनावट ऊपरी तौर पर तुकबंदी सी लगती है पर कहीं गहरे में यह करुणा, उदासी, भय, आतंक और विडम्बना को भावापन्न भी करती है—

> **"चौड़ी सड़क गली पतली थी**
> **दिन का समय घनी बदली थी**
> **रामदास उस दिन उदास था**
> **अंत समय आ गया पास था**
> **उसे बता यह दिया गया था—**
> **उसकी हत्या होगी।"**

'लोग भूल गए हैं' की कविताएँ काव्यात्मक निबंध सी लगती हैं। यहाँ कवि ने रिपोर्ताज की विवरण मूलक शैली अपनायी है। जगह-जगह टिप्पणियाँ भी दी हैं। दृश्य के अन्दर दृश्य और बीच-बीच में आने वाले अंतराल—जो कवि की टिप्पणियों से काफी नाटकीय हो गए हैं—एकदम एक नई शैली का अहसास कराते हैं।

Scanned by CamScanner

कला-एरम्परा के लिए, जिसमें मैं अपनी एक मूर्ति बनाता और एक ढहाता हूँ और 'आप कहते हैं कि कविता की है।" इस भाँति कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि अपने परिवेश को वाणी देना/देते रहना उसके लिए जिन्दा रहने की विवशता है और इसे पूरी ईमानदारी से व्यक्त करना रचना की पहली शर्त है। रघुवीर सहाय ने अपनी देशधर्मिता, जनभावना को पूरी ईमानदारी के साथ तथ्यपूर्ण रूप में प्रतिपादित किया है।

□□

4.

रघुवीर सहाय की भाषा और काव्य-शैली

"सब कुछ लिखा जा चुका है अतीत में
यह आकर मत कहो मुझसे पंडित जनों
एक बात अभी लिखी नहीं गई है, बाकी है
होने को भी बाकी लिखी जाए या न जाए
वह तुम जानते हो क्या ? अपनी रटी बोली में
तुम वह भी बतला सकते होगे,
क्यों नहीं ?
विश्वविद्यालयों ने ऐसा कर रखा है प्रबंध
यहाँ मैं अकेला एक छोटी सी चीज़ का
अपने समाज में अर्थ देख रहा हूँ
वहाँ कह रहे हो तुम, यह तो होता ही है। .....
अन्यायी भाषा है जिसके प्रतिष्ठान में विषा बन्द है
विषा जो मुक्त हमें करती है वह विषा।" (लोग भूल से गए हैं)

काव्य को भारतीय साहित्य में महावाक्य भी कहा गया है। ऊपर लिखी गई पंक्तियाँ सतही तौर से बड़ी सामान्य सी लगती हैं पर बहुत सपाटे से एक ही रौ में इन पंक्तियों को पढ़ा नहीं जा सकता। अगर पढ़ भी लिया जाए तो इनका अर्थ नहीं समझा जा सकता। अगर अर्थ समझ भी लिया जाय तो निहित व्यंग्य का भावन नहीं किया जा सकता और अगर व्यंग्य भी जान लिया जाए तो उक्त पंक्तियों में से स्वन-स्वन रिसती हुई विषाद, आक्रोश एवं क्रोध की संवेदना को जीया नहीं जा सकता। कोमा, पूर्णविराम, अर्धविरामादि भी यहाँ नहीं हैं जो वाक्य की/भाषा की गति को नियंत्रित/नियमित करें। अगर तेजी से पढ़ जाएँ तो पूरा बंध अटपटा सा लगेगा। न अर्थ के गुंजलक ही खुल पाएँगे, न ही काव्य का सौंदर्य-बोध हस्तामलक हो पाएगा। वस्तुतः शमशेर के से काव्य की सी यही भाषिक/संरचनात्मक कलादृष्टि रघुवीर सहाय की कविता की विशेषता है, जो उसे अन्य समकालीन कवियों से एकदम अलग एक विशिष्ट भूमि पर प्रतिष्ठित कर देती है। रघुवीर सहाय की कविता में वाक्य पाठक को अपनी ओर खींचता है। रघुवीर की कविता में भाषा बिम्ब-प्रधान न होकर विचार-प्रधान है,

Scanned by CamScanner

पिटे हुए नेता, पिटे हुए अनुचर, कठमुल्ले, पिछलग्गू, मुस्टंडे विचारक, हाँफते, उबारते, हँसते भीमकाय भाषापंडित, घंटा घनघनाते पुजारी, पिटे हुए दलपति, मक्कार मंत्री, ठसकदार कार्यकर्त्ता, उकारते कवि, फर्श धोता कथाकार, पुलकायमान राष्ट्रकवि, जनता, विधायक, सचिव, पुलिस, डाक्टर, संपादक, प्रोफेसर, अध्यापक, पेशेवर नेता, चोर, लुटेरे, हत्यारे, बाजीगर, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, न्यायविद् वकील, राज्यपाल, मुख्यमंत्री, जिलाधीश, गृहमंत्री, सांसद, बलात्कारी, चित्रगुप्त सभा के सदस्य–सब उनकी कविताओं में मिल जाएँगे। पूरे का पूरा सामाजिक/प्रशासनिक देशीय तंत्र रघुवीर सहाय की कविता में मुखरित हो उठा है। कवि यहाँ तक कह देता है–

"नाम कहाँ तक याद रखूँ
लोगों को उनकी तोंद से जानता हूँ।"

राजनीति का विद्रूप-वीभत्स रूप रघुवीर सहाय की कविताओं में खुलकर प्रतिपादित हुआ है। आजादी के बाद सत्ता के गलियारों में जमे मक्कार/धूर्त-राजनीतिज्ञ और उनके छुटभैय्ये नौकरशाह आम आजादी को कहाँ तक खींच ले गए हैं, देश की क्या हालत कर दी है–इसका प्रतिपादन कवि ने बीसियों कविताओं में किया है। एक दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

"पाँच दल आपस में समझौता किए हुए
बड़े-बड़े लटके हुए स्तन हिलाते हुए
जाँघ ठोक एक बहुत दूर देश की विदेश नीति पर
हाँकते हाँकते मुँह नोच लेते हैं
अपने मतदाता का।

x x x x

पूछेगा संसद में भोलाभाला (?) मंत्री
मामला बताओ हम कार्रवाई करेंगे
हाय-हाय करता हुआ, हाँ-हाँ करता हुआ, हें-हें करता हुआ
दल का दल
पाप छिपा रखने के लिए एकजुट होगा
जितना बड़ा दल होगा, उतना ही खाएगा देश को।

x x x x x

दफ़्तर में 'दल' के गया, वे जमे बैठे थे
तने हुए, जितने वे तन सकते थे मोटे शरीर
उनके तले शक्ति थी दबी हुई जनता की
उस शक्ति की पीड़ा उनके चेहरे पर थी
जब वे एक लम्बी पाद पादे–
राहत-मिली।"

x x x x

यह समाज मर रहा है इसका मरना पहचानो मंत्री
देश ही सब कुछ है, धरती का क्षेत्रफल ही सब कुछ है।

Scanned by CamScanner

पोटली के अन्दर है भूख
आसमानी चढ़ानी बोझ
ढो रही है पत्थर की पीठ
लाल मिट्टी लकड़ी ललछौंर
दाँत मटमैले, इकटक दीठ
कटोरे के पेंदे में भात
गोद में लेकर बैठा बाप
फर्श पर रखकर अपना पुत्र, खा रहा है चुपचाप।"

उक्त उद्धरणों से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि रघुवीर सहाय ने मामूली अभावग्रस्त भारतीय जन को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। उनकी पीड़ा, हताशा, दुःख, संवेदना और विवशता को प्रतिपादित किया है। रघुवीर सहाय निर्मल वर्मा की तरह अन्तर्राष्ट्रीय चमत्कारवाद से ग्रस्त नहीं हो जाते। वे बुद्धिजीवियों की पश्चिमोन्मुखी दिमागी कसरत और कलाबाजी से आक्रान्त हो उन्हीं की बोली में हुंडारनाद भी नहीं करते। अपितु उनकी कविताओं में पूरे देश की छाप स्पष्ट है। उनकी कविताएँ पूर्णतः हिन्दुस्तान के परिवेश, हिन्दुस्तान की सरज़मीं की कविताएँ हैं। वे कभी भी गैर-हिन्दुस्तानी तरीके से नहीं सोचते, नहीं बोलते, नहीं लिखते। रघुवीर सहाय का आम आदमी—आदमी से एक दर्जे नीचे की जिंदगी जीने का दर्द भोग रहा है। कवि ने इसी दर्द को, इसी मजबूरी को अपनी कविताओं में प्रतिपादित किया है। कवि ने पूरे देश में व्याप्त तकलीफ को बड़ी संजीदगी के साथ व्यक्त किया है। पाठक रघुवीर सहाय के काव्य को पढ़ते हुए एक खास किस्म की पीड़ा और उदासी अनुभव करते हैं। वह कुछ समय के लिए अकेला होकर कवि के कवितागत पात्रों के अकेलेपन के दर्द को अपने में पूरी सिद्दत के साथ महसूस करता है। वस्तुतः सच्चाई यह है कि हर ईमानदार आदमी अकेला होता है और सच्चा रचयिता भी अपने सृजन-क्षणों में एकदम निहायत अकेला होता है। इसी अकेलेपन का, अनुभव की इसी ईमानदारी का प्रतिपादन रघुवीर सहाय ने कई कविताओं में किया है–

"पर मेरा एक और जीवन है
जिसमें मैं अकेला हूँ।

x x x x

"वह मेरी नफ़रत थी, और वहाँ मैं अकेला था
और शाम थी।
न कोई कोशिश थी, न कोई काम था, न कोई दर्द
क्या था वह अपने को खोते हुए आकाश में
जैसे एक पवित्र भय
क्या था वह एक अकेले में वहाँ एक निराला सा पहाड़
दिल में, सागरों की पछाड़ सा दिल में
आँधियों की दहाड़ सा दूर से लाकर मुझमें
डूबा जाता हुआ मुखों के बावजूद
उस क्षण मैंने देखा कि मैं मर सकता हूँ
ठीक उतने ही सहज जितने से और कुछ कर सकता हूँ
बिल्कुल अपनी तरह और बेकार।"

रोज़-रोज़ थोड़ा-थोड़ा मरते हुए लोगों का झुंड
तिल-तिल खिसकता है शहर की तरफ।

x x x x

मैं क्या कर रहा था जब मैं मरा
मुझसे ज्यादा तो तुम जानते लगते हो
तुमने लिखा मैंने कहा था स्वाधीनता
शायद मैंने कहा था बचाओ।"

रघुवीर सहाय की कविता में आज़ादी के बाद जो आतंक धीरे-धीरे बूढ़े भारत की नसों में छाता चला गया है, जो अपमान, असुरक्षा और असामाजिकता व मानव-मूल्यहीनता, पाशविकता देश की धमनियों में भरती चली गई हैं-उसी को प्रतिपादित करना कवि का अभिप्रेत रहा है। उदाहरण के लिए 'उन्होंने कहा, यह एक चाल है—जैसी कविता को लिया जा सकता है। कवि ने राजनीति के उस छल-छद्म पर गहरी चोट की है जिसने हर व्यक्ति के दर-औ-दीवार में छेद कर दिए हैं जो हर नागरिक को प्रतिबंधित कर गई है। कवि साफ़ कहता है—

"हँसो तुम पर निगाह रखी जा रही है
हँसो अपने पर न हँसना क्योंकि उसकी कड़वाहट
पकड़ ली जाएगी और तुम मारे जाओगे
ऐसे हँसो की बहुत खुश न मालूम हो
वरना शक हो जाएगा कि यह शख़्स शर्म में शामिल नहीं
और मारे जाओगे।

x x x x

जितनी देर ऊँचा गोल गुम्बद गुँजता रहे उतनी देर
तुम बोल सकते हो अपने से
गूँज थमते-थमते फिर हँसना
क्योंकि तुम चुप मिले तो प्रतिवाद के जुर्म में फँसे
अन्त में हँसे तो तुम पर सब हँसेंगे और तुम बच जाओगे।"

वस्तुतः हम सब छली है, धोखबाज है। अपने को बेहतर दिखाने की कोशिश में स्वांग भर रहे हैं और इस उपक्रम में अपने को ही छल रहे हैं। आत्मछलना का अहसास कराना ही रघुवीर सहाय की कविताओं का प्रतिपाद्य है। अन्तरात्मा की यह त्रासद पीड़ा कितनी दुःखदायी है, कितनी घातक है, इसे आत्महत्ता (कवि और पाठक) ही समझ सकता है। अपने को छलते हुए जीना, जीते रहना आज के लोकतंत्र की स सबसे बड़ी विवशता बन गई है, सब से बड़ी त्रासदी बन गई है, इसी का प्रतिपादन रघुवीर सहाय ने अपनी तमाम कविताओं में किया है। रघुवीर सहाय ने 'मारे गए' या 'हत्या' जैसे मुहावरों को खूब उछाला है। एक बानगी देखने लायक है—

"क्योंकि वे हँसे थे
तुमने मार डाले लोग.....
क्योंकि वे सुस्त पड़े थे, तुमने मार डाले लोग.....

Scanned by CamScanner

देखने से लगता है कि कवि का संपूर्ण काव्य आत्मसंकुचन, आत्मविकृति, निराशा, दैन्य, कुंठा और पराजय बोध का काव्य है। पर गहराई से देखा जाए तो बात ऐसी है नहीं। वस्तुतः तार सप्तक में जो आरंभिक कविताएँ छपी थीं उनमें सद्यः प्राप्त स्वतंत्रता एवं तज्जन्य चतुर्मुखी विकास की आशा-आनन्दपूर्ण संभावनाओं की झलक अधिक थी पर शीघ्र ही अवसरवादी राजनीति और भ्रष्ट अर्थप्रशासन तंत्र ने पूरी की पूरी व्यवस्था को प्रदूषित करना शुरू कर दिया—तथा देखते ही देखते पूरा देश, पूरा समाज एक मूल्य हीनता की स्थिति में चला गया। इससे कवि का मन क्षुब्ध हो उठा। उसके अन्दर का जागरूक पत्रकार अपने प्रति, व्यक्ति के प्रति, वर्ग के प्रति, समाज के प्रति राजनेता, धर्मवेत्ता, प्रशासनतंत्र, अर्थतंत्र हरेक के खिलाफ विद्रोह कर उठा। उसने व्यक्ति को सचेत होने के लिए प्रेरित किया—देश के जन-समुदाय का संघर्ष के लिए आवाहन भी किया, पर पाया कि जनतंत्र में जनता ही सही जनतांत्रिक मूल्यों को समझने और उनपर अमल करने कराने के लिए तैयार नहीं है इससे उसे घोर निराशा हुई उसका मन आक्रोश से भर उठा। उसे लगा कि आजाद हिन्दुस्तान में हम सब आत्महत्या पर उतारू है। हम सब कहीं न कहीं भ्रष्ट हैं, दोगले हैं, दोहरे मानदंड पाल रहे हैं। रघुवीर सहाय ने इस हिप्पोक्रेसी को पूरी संजीदगी के साथ अपनी कविताओं में उतारा है। वस्तुतः आत्महत्या और हत्या में कवि ने कोई विशिष्ट अंतर नहीं किया है। 'आत्महत्या के विरुद्ध' और 'हँसो-हँसो, जल्दी हँसो' नामक काव्य संग्रहों की अधिकांश कविताओं में यह 'हत्या' शब्द बार-बार आया है। वस्तुतः यह कवि की विवशता एवं देश के हर व्यक्ति की आत्मघातिनी अवश स्थिति का व्यंजक है। आज के हालात बड़े अजीबोगरीब हो गए हैं। परिस्थितियाँ एकदम क्रूर, घातक और विषादमयी हो गई हैं। मामूली और ईमानदार आदमी हर मोड़ पर मारा जा रहा है। हर व्यक्ति एक विडम्बनापूर्ण स्थिति में है। उसे पता है कि उसकी हत्या होगी उसको पता है उसकी हत्या होगी। और इस पूरे अभिज्ञान में उसकी हत्या हो जाती है। कर दी जाती है, यह राजनैतिक एवं सामाजिक यथार्थ कवि ने अपनी अनेक कविताओं में प्रतिपादित किया है। सब मौन है, खामोश है—हत्यारा आता है तौल कर चाकू मारता है—रूमाल से चाकू पर लगे खून को साफ़ कर सधे-कदमों से भीड़ को ठेलता हुआ बेदाग, बेखौफ़ चला जाता है और पूरी की पूरी भीड़ देखती रहती है। कोई कुछ नहीं कहता। समाज का, व्यक्ति के अन्तश्चेतन का, प्रशासन का, राजनीति का यह अपराधीकरण स्वतंत्र भारत का घोर यथार्थ है और रघुवीर सहाय की पत्रकार दृष्टि ने अपनी कविताओं में इसी को वाणी दी है।

'क्रिमिनेलाइज़ेशन' (अपराधीकरण) के यथार्थ को यथावत् प्रस्तुत करना और प्रकारान्तर से उसके प्रति एक बेहद गुस्सा, विरोध और जागृति का भावोत्प्रेक्षा करना रघुवीर सहाय का लक्ष्य है। उन्होंने अपनी अधिकांश कविताओं में इसी लक्ष्य को प्रतिपादित किया है। उदाहरण के लिए रघुवीर सहाय की 'रामदास' नामक कविता आज की उस क्रूर अमानवीय स्थिति को पूरी नग्नता के साथ हमारे समक्ष रख देती है। उसने अनेक कविताओं में स्पष्ट किया है कि अपराध करना तो एक आम बात हो गई है। हत्या करना तो एक सहज कर्म हो गया है। रघुवीर सहाय और अपराध के विवरण रिपोर्ताज की शैली में बगैर किसी उत्तेजना के, भय के सहज भाषा में देना चाहता है। वह कविता में अपराध के यथार्थ का विवेचन कुछ इस तरह करता है—जैसे उसे करने वाले भी/भोगने वाले भी/देखने वाले भी एक प्रकार का मज़ा ले रहे

2.

रघुवीर सहाय की कविता की मूल-संवदेना

आधुनिक हिन्दी कविता में स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में रघुवीर सहाय का नाम एक गणमान्य नाम रहा है। रघुवीर सहाय ने कम से कम शब्दों में पूरी मितव्ययता के साथ अपने वायवीय अनुभव, बाह्य परिवेश, भौतिक जगत् और आम आदमी की छोटी-छोटी आकांक्षाएँ, असफलताएँ, स्वप्न क्रियाएँ, राजनैतिक तथा आर्थिक व नैतिक विद्रुपता व विजड़ित किंकर्तव्यविमूढ़ता के बीच फँसे, दुर्मुंह, दुरंगे सुविधाभोगी अवसरवादी श्रीमन्तों की कारगुजारियों को ध्यान में रखते हुए व्यक्त की है। सीधी सपाट-सरल जनबोधिनी भाषा में कवि ने एक विवादात्मक संवाद छेड़ा है। वर्ग व्यवस्था की आर्थिक इकाइयों में बँटे/फँसे आदमी की यथार्थ स्थिति का कवि ने व्यंजित की है। रघुवीर सहाय की कविता में स्वप्नों का अतीन्द्रिय आनन्द राग नहीं मिलेगा। अनेक नए कवियों का सा घोर अश्लील फ्रायडीयन बिंब विधान भी नहीं मिलेगा। अपितु रघुवीर सहाय वर्तमान परिवेश के प्रति संशय और शंका व्यक्त करते हैं। उनमें वर्ग व्यवस्था के प्रति किसी प्रकार की प्रतिहिंसा का भाव नहीं है–अपितु वे राग-विराग से मुक्त होकर एक तटस्थ बुद्धिजीवी पत्रकार की निगाह से/एक रिपोर्टर की सी पैनी दृष्टि से अपने पात्रों को/कथ्य को देखते हैं–प्रस्तुत करते हैं। वे स्वयं कहते हैं–

"नफरत करते हुए मैं कोई सृष्टि नहीं कर सकता
सब छोड़ना होगा लिखने के वास्ते।"

वस्तुतः रघुवीर सहाय का काव्य वर्गवाद का काव्य नहीं है। वह प्रजातांत्रिक मूल्यों का समर्थन भी करता है और प्रजातंत्र की कमियों को भी पुरजोर शब्दों में उभारता है। वह देश के शोषित वर्ग के प्रति दया-भाव और सहानुभूति पूर्ण रवैय्या भी अपनाता है और शोषित प्रजावर्ग के निठल्लेपन, उनके कुंठित एवं कुविचारित मन का विश्लेषण भी करता है। 'सीढ़ियों पर धूप' की भूमिका में अज्ञेय ने कहा है–"कविता में कोई अभिनेता नहीं होता, जो स्वांग के बीच, ठीक उसी क्षण में, जब आप अभिनेता से एकात्म स्थापित करते हुए भावुक होने लगे, रोककर बताए कि मैं मात्र अभिनेता हूँ और फलाँ पात्र का अभिनय कर रहा हूँ। सहाय जी की कविता मे कवि संघात के इसी अभिनेता को निभाता है। यहीं से उसमें एक किस्म का नाटक पैदा होता है। एक किस्म का 'ऐलिएनेशन इफेक्ट' जिससे नाट्य भी बना रहे और अर्थ को और गौरव और महत्व मिले। उस बात को, जिसे कहा जा रहा है।" कहने का अभिप्राय यह है कि रघुवीर सहाय अपने मनस्थ भाव को पूरी ईमानदारी और साफगोई के साथ व्यक्त करता है। रघुवीर की कविता देश के शहरी मध्यम वर्ग के सुख दुःख, उसकी आकांक्षा-आशंका, उसके राज-विराग, उसके पतन, अहंकार, चरित्र-विमर्श, घोंपूपन, कौंईयापन और राजनैतिक विमोहन की कविता है। देश का शहरी मध्यम वर्ग एकदम मक्कार और चालाक भी है। साथ ही बेवकूफ

Scanned by CamScanner

गद्य की भाषा के माध्यम से रघुवीर सहाय ने कविता को विचार संकुल बनाया। विचार संकुल चीज में प्रतीक नहीं पैदा होते, उसमें अवधारणाएँ पैदा होती हैं, और प्रतीक भावुक कला में पैदा होते हैं। इन प्रतीकों का अर्थ कवि के मन में होता है। छायावाद में यही सब था। भाव का वस्तु पर आरोपण ही छायावाद में है। प्रतीक एकदम यही करता है। इसी अर्थ में अज्ञेय की कविता भी रोमैंटिक कविता है। रघुवीर सहाय उन्हीं कवियों में हैं जो इन्हीं की परम्परा में होकर, उन्हें तोड़कर आगे बढ़ते हैं।

रघुवीर सहाय के यहाँ राजनीति अविवेक की अवधारणा है। रघुवीर सहाय पत्रकार थे और "दिनमान" के सम्पादक भी। राजनीति उनके जीवन कर्म का विषय भी थी और उनके समाज का सत्य भी। इसलिए उससे वे निरपेक्ष नहीं रहते और उनकी कविता बहुत दूर तक राजनीति से मुठभेड़ करती है। अतः उनकी कविता में राजनीति अवधारणा के रूप में महत्वपूर्ण हो गई। जैसे धर्म मध्यकालीन समाज की नियामक संस्था है वैसे ही राजनीति आधुनिक समाज में निर्णायक हो गई। रघुवीर सहाय राजनीति के बारे में निरंतर सोचते विचारते हैं उनकी कविता में शुरू में राजनीति की भूमिका बड़ी प्रत्यक्ष है :

नेक नाम नेहरू ने कहा
अन्याय आम राय से होगा

इससे राजनीति की भूमिका और अन्याय का पक्ष समझ आता है। अत्याचारी और पीड़ित समाज में है। राजनीति एक के पक्ष में है एक के विरोध में। इसीलिए सत्ता का वर्ग चरित्र रघुवीर सहाय की कविताओं में है। अन्याय को आम राय में बदलने का काम राजनित करती है। यही राजनीति का चरित्र है। यह सारी प्रक्रिया समाज की विषमता को, अन्याय को सुदृढ़ करती है। यही राजनीति और समाज का आपसी सम्बन्ध है। रघुवीर सहाय ने लिखा :

होशियार हलचल है
बहुत गतिविधियाँ हैं
तीस साल से जो अध्यक्ष थे बने हुए
दोमुँही भाषा के बूते..........
..............................अध्यक्ष हैं।

ये अध्यक्ष राजनीतिक सत्ता के प्रतीक थे। "आत्महत्या के विरुद्ध" संग्रह में राजनीति के प्रति एक राय थी, वहीं दूसरी है। जब तक जनता को बर्गलाया जा सकता है तब तक आम राय से अन्याय होता है। जब यह संभव नहीं होता तब निरंकुश दमन होता है।

निर्भीक भी ये दिखते थे
पाखंडी भी थे

आज की राजनीति का यही रूप है। यह मानो भविष्यवाणी भी है। एक तरफ छल है दूसरी तरफ अन्याय। राजेश जोशी ने भी लिखा है:

कैसा यह दिव्य समय है

रघुवीर सहाय की कविता में राजनीति जैसे करवट बदलती है। जैसे जैसे दृश्य बदलता है वैसे वैसे उनकी टिप्पणी का भी रूप बदलता है। यह उनकी संवेदना का विकासमान रूप है। यदि रघुवीर सहाय जनता को पीड़ित करनेवाली राजनीति की आलोचना करते हैं तो [illegible]

Scanned by CamScanner